निरन्तर

मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास

मूल लेखक
भगवतीप्रसाद वाजपेयी

विशेषता

ईर्ष्या-द्वेष सभी व्यक्तियों में होता है। किसी में कम, किसी में अधिक। स्वाभिमान तो मनुष्यों का भूषण है, उसके बिना शान्ति सम्भव नहीं। परन्तु यह समझ लेना कि मैं ही सबसे बड़ा और महान् हूँ, अतः जो मेरी आरती नहीं उतारता, मेरी वन्दना नहीं करता, वह मेरा नहीं हो सकता, एक भ्रम है। और जब तक यह भ्रम दूर नहीं हो जाता, तब तक आत्म-शुद्धि कदापि सम्भव नहीं है।

कुछ लोग उपकार करते हैं। उन्हें इसकी प्रसन्नता भी होती है। उन्हें प्रसन्न रहना भी चाहिए। किन्तु उपकार के नाम

पर जो लोग अपना कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, वे बाँह में छिपे हुए उस सर्प के समान हैं, जो अवसर पाते ही डस लेता है।

यदि कोई यह सोचता है कि बहुत पढ़कर या ज्ञानवान बनकर, मैं जीवन में सफल हो जाऊँगा, लोग मेरा आदर करेंगे और अन्त में मैं अपना एक आदर्श छोड़ जाऊँगा, तो यह उसकी मूढ़तम कल्पना है, जो तरुणवृन्द को फुसला-फुसलाकर उसे सदा एक भ्रम में डाले रहती है और अन्त में उसकी सारी उन्नति रोक देती है। कोई भी व्यक्ति स्वप्न देख-देख कर चरित्रवान नहीं बन सकता। चरित्र का निर्माण तो अपने आप को गढ़-गढ़कर, ढाल-ढालकर करना होता है। कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा, संयम और सदाचार के प्रति श्रद्धा, सत्य के प्रति अनुराग, ज्ञान के प्रति एक सतत जिज्ञासा और मानवता के उत्कर्ष के प्रति एक दृढ़ आस्था ही महान् चरित्र के निर्माण के मुख्य आधार हैं।

राष्ट्र के नव-निर्माण की इन पावन घड़ियों में इन्हीं सब भाव-वृत्तियों का लेकर मैंने इस मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास की रचना की है। मैंने मनोग्रन्थियों के समाधान और निराकार के कतिपय ऐसे प्रयोग दिखलाये हैं, जो भूले-भटकों को उचित जीवन मार्ग पर आरुढ़ कर देने में सफल होकर रहे हैं। मैंने सयम और संतुलन पर बल दिया है। मानवी

दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने की विधियाँ स्पष्ट की है, उस चरित्र-निर्माण का क्रम-विकास दिखलाया है, जिसकी निष्ठा विधा से एक साधारण प्राणी भी महान् बनकर अपने आपको चिरस्मरणीय बना सकता है।

मंगलपुर,
जिला कानपुर

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

अपेक्षित प्रसन्नता, जिसका एक निश्चित आधार होता है, प्रायः मूक रहा करती है। किन्तु आकस्मिक प्रसन्नता, जिसमें आवेग अधिक होता है तुरन्त प्रकट हो जाती है।

महेश का पत्र पढ़ते-पढ़ते परमेश्वरीलाल पुलकित हो उठे। तुरन्त घर के अन्दर आकर बोले—"अरे सुनती हो ?"

पत्नी के केश अब खिचड़ी हो चले थे। सामने का एक दाँत कृत्रिम था। कई दाढ़ें हिलने लगी थीं। स्वामी का स्वर सुनकर भण्डार-गृह से बाहर निकलती हुई बोली —"क्या ?"

परमेश्वरीलाल ने देहरी के भीतर ही ठहरते हुए कहा— "बच्चा की चिट्ठी आ गई, उसकी नौकरी पक्की हो गई।"

"पक्की हो गई !" आश्चर्य के साथ कमलेश्वरी ने उत्तर दिया।

"हाँ, अभी-अभी चिट्ठी मिली है। आज त्रिवेदी जी के घर एक सीधा भिजवा देना और महरी और मेहतर को पाव-पाव भर मिठाई। · मगर ठहरो।"

कथन के साथ मुरीं में हाथ लगाते हुए उन्होंने कह दिया— "दो रुपये की मिठाई—यह लो—मँगवाकर घर तथा पास-पड़ोस में बँटवा देना।"

कमलेश्वरी ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया "नौकरी लगने की खुशी में बच्चा के इष्ट-मित्र भी तो शामिल होंगे। अच्छा तो यह होगा कि जब वह आ जाय, तभी यह मिठाई बाँटी जाय।"

दायीं ओर के बरामदे मे चारपाई पड़ी हुई थी। परमेश्वरीलाल उसी पर बैठे हुए एक नवयुवक से बातें कर रहे थे। देहरी तक पहुँचती हुई सरोज सहमा ठिठक गयी।

हेमचन्द्र उत्तर की ओर मुँह किए हुए चारपाई पर बैठा हुआ था। उसके हाथ मे एक दैनिक पत्र था।

गौने के बाद सरोज की दृष्टि पहली बार हेमचन्द्र पर पड़ी थी। पहले तो वह संकोच से नतमुखी हो उठी, फिर कमलदल से पलक उठाती हुई पिता को—लक्ष्यकर बोली—"बाबू, भैया की चिट्ठी ?"

परमेश्वरीलाल ने जेब से चिट्ठी निकालकर सरोज की ओर बढ़ा दी। बिना कुछ बोले, लेकिन एक बार कमल-नयनों की कोर हेम पर डालती हुई सरोज चिट्ठी लिए अन्दर चली गई।

हेम का मन बुझा-बुझा सा रहता था। बारम्बार उसके अन्तर से यही स्वर निकला करता—'सरोज दूसरे की हो गई है। अब मेरे लिए इस संसार मे क्या है ? यह सब जानकर भी मैं उसी के द्वार पर आ बैठता हूँ। क्या मेरे लिए यह लज्जा की बात नहीं है ?'

अपनी असहाय स्थिति पर हेम को स्वयं तरस आने लगा। उसकी आँखें डबडबा आयी।

इसी समय परमेश्वरीलाल बोल उठे—'अरे हेम, तुम्हीं न बच्चा को चिट्ठी लिख दो कि वह झट लौट आये। घर से गए पूरा महीना बीत गया है।''

आत्मलीन हेम कुछ चौंकता हुआ-सा बोला—"ऐं ! चिट्ठी ? अच्छा लाइये, मैं ही लिख दूँ।" यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था कि

परमेश्वरी चाचा यह चिट्ठी क्यों लिखवा रहे हैं ?

इतने में सुरेश आ पहुँचा। परमेश्वरीलाल उससे बोले—"जाओ, अपनी अम्मा से दो रुपये ले लो और बाजार से मिठाई ले आओ। बच्चा की नौकरी तय हो गई। नैनीताल से उसकी चिट्ठी आ गई है। सरोज अभी ले गई है।"

सुरेश झोले में साग-भाजी लिये हुये था। बड़े भाई की नौकरी लग जाने का समाचार सुनकर उसका मन-मयूर प्रसन्नता से नाच उठा। वह बोला—"मैं जानता था—इस बार भैया अवश्य सफल हो जायेंगे। पर क्या उन्होंने यह नहीं लिखा कि वे कब तक लौटेंगे ?" परमेश्वरीलाल बोले—"जान पड़ता है और दो-चार दिन घूमकर लौटेगा।" सुरेश अन्दर चला गया।

हेमचन्द्र जेब से फाउन्टेनपेन निकालकर सामने रखे दैनिक-पत्र पर लिख रहा था—फूल हँसते-खेलते, पवन-झकोरों से झूमते रहते हैं। काँटों को मुस्काना तक नसीब नहीं होता; जबकि वे उसी टहनी के पास, चुपचाप इकटक खड़े सब देखते रहते हैं।

क्रान्तिकारी कभी पीछे नहीं देखता, किन्तु विचारशील व्यक्ति तूफान के समय भी हवा का रुख देखता रहता है।

हेम आगे सोचने लगा—'लेकिन फूल मुरझा-मुरझा कर, सूख-कर कितनी जल्दी मिट जाते हैं ! काँटों का बाल भी बाँका नहीं होता।'

परमेश्वरीलाल ने कमरा खोलकर अल्मारी से पोस्टकार्ड निकाला और हेम को देते हुए कहा—"चिट्ठी में तुम अपनी ओर से लिख देना कि सब लोग उत्सुकता के साथ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

सरोज अन्दर जाकर भाई का पत्र पढ़ती-पढ़ती सोच रही थी—'बाबू ने आज इनको अन्दर क्यों नहीं भेजा ?'

सुरेश ने अन्दर आते ही पूछा—"भैया की चिट्ठी कहाँ है ?"

चिट्ठी सरोज ने सुरेश को दे दी। फिर बिखरे केशों की लट सिर की केश-राशि में मिलाती हुई प्रसन्नता के साथ बोली—"बड़ी अच्छी चिट्ठी है। लिखा है—मार्ग में झाड़ियाँ हैं, खड्ड हैं, ऊँचे-ऊँचे गगन-चुम्बी पर्वत हैं . पर्वतों पर सघन वृक्षावली। वृक्ष भी कैसे ? एकदम सीधे, ऊँचे-से-ऊँचे, उठते चले गये हैं। मार्ग कहीं सीधा, कहीं टेढ़ा, कहीं चढ़ता और कहीं उतरता हुआ। किन्तु है तो अस्त-सोगत्वा पर्वत-पथ ही। ऊँचे उठना ही उसका धर्म है—मेरी महत्त्वाकांक्षा की भाँति—पढ़कर एक झकोरा आ जाता है। इच्छा होती है कि किसी प्रकार झट से मैं भी नैनीताल पहुँच जाऊँ।"

सुरेश ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्या मुश्किल है ? जीजा यदि चाहते, तो इस समय तुम नैनीताल में ही होती।" सरोज सकुचित हो उठी। उसके मन में आ रहा था—"हूं, अकेले उनके चाहने से क्या होता है !"

सुरेश साग का झोला माँ के पास रखकर कहने लगा—"अम्मा, लाओ रुपये दो, मिठाई ले आऊँ। बाबू ने कहा है।" कमलेश्वरी ने नोट अपने अंचल में बाँध लिये थे। गाँठ खोलकर सुरेश को वही नोट देती हुई चुपके-से बोली—'मिठाई डेढ़ रुपये की ले आना। आठ आना हमको लौटा देना।" फिर थोड़ा रुक कर साथ में धीरे से यह भी कह दिया—"पैसे लौटाकर जरूर देना।" सुरेश ने नोट हाथ में लेकर फुसफुसाते हुए उत्तर दिया "पर इस बचत में आधा साझा हमारा भी रहेगा, अम्मा।" सुरेश की इस

चालाकी को लक्ष्य कर कमलेश्वरी गम्भीर होकर बोली—"अभी से साझा-बाझा सोचने लगा, शैतान। यह नहीं समझता की काम पड़ने पर जब रुपयों की कमी का सवाल उठता है, तब उसकी पूर्ति कहाँ से होनी है और फिर कौन करता है?"

सुरेश किसी विरोधी तर्क को जल्दी न मानता था। दूसरा पक्ष न देखकर वह झट अपने उद्योग की कील जड़ने लग जाता। उसने कह दिया—"अच्छा चौथाई ही सही। जाओ, दो आने पर समझौता करता हूं।"

थाल के ऊपर रेंगती हुई कमलेश्वरी की तर्जनी रुक गई। सुरेश की बात सुनकर वह मुस्कराती हुई बोली—"ऐसा ही है, तो दो आने पैसे ले लेना।"

सुरेश चला गया। वह उस समय यह सोचता हुआ बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि पीछे पड़ जाओ तो सफलता अवश्य मिलती है।

हेम पत्र लिख चुका था। वह निःश्वास लेता हुआ सोच रहा था—'सरोज दूसरे की हो गयी है। अब उसे मुझसे मिलने-जुलने की क्या आवश्यकता है? हो सकता है, वह अब मेरी छाया से भी दूर रहना चाहती हो। माना कि मैंने नहीं पूछा था—'कब आयी सरोज, अच्छी तो हो?' 'पर उसको तो कुछ कहना चाहिये था। इतना ही पूछा होता—आजकल क्या करते रहते हो दद्दा?' पर उसने मेरी ओर देखा तक नहीं।'

उसे फिर ध्यान आ गया—'वह दूसरे की हो गयी है।'

पर इस बात के ध्यान मात्र से हेम का समाधान न हुआ। उसे प्रतीत होता था, यह मुझे चुनौती दी गई है। मुझसे कहा गया है कि जीविकाहीन व्यक्ति होकर तुम कुछ नहीं हो।

परमेश्वरीलाल ने कह दिया —"अब इस पत्र को तुम्हीं लेते जाना हेम। रास्ते में कोई पत्र-पेटी मिलेगी ही, उसी में छोड़ देना।"

हेम जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया। आग के साथ कड़ाह में, जैसे आम की छिली हुई फांकें उफनती रहती हैं, अतर्की ज्वाला में उसकी सारी देह वैसे ही उबल रही थी।

इतने में परमेश्वरीलाल आश्चर्य के साथ बोले —"अरे, तुम तो चल दिये! अपने मित्र की नौकरी ठीक होने की खुशी में मिठाई तो खाते जाओ।"

हेम सोच रहा था— 'मेरा कोई नहीं है, मैं कुछ नहीं हूं। संसार के लिए मैं व्यर्थ हूं। मैं यहां आया ही क्यों?'

वह यह कहने ही जा रहा था कि मिठाई फिर मिल जावेगी, ऐसी जल्दी क्या है? इतने में शरमाती-शरमाती सरोज पुनः आकर बोली - 'दद्दा, आपको अम्मा बुला रही हैं।'

अभी क्षण भर पहले जो हेम अग्निकुण्ड में पड़ा जला जा रहा था, वही अब जैसे रत्नाकर की लहरों की कल्लोल राशि में आ पहुँचा।

देहरी के भीतर नतशिर खड़ी हुई सरोज हेम को आता देखकर एक पग पीछे हट गई। तब आगे-आगे अन्तःपुर को चला हेम, पीछे-पीछे और फिर बराबर साथ होती हुई तरंगित सरोज। एक क्षण दोनों मौन रहे, फिर सरोज का धैर्य टूट गया। बोली "इतनी देर से दरवाजे पर बैठे हो। धड़धड़ाते हुए अन्दर नहीं आ सकते थे? आंगन में आ पहुँचने पर अगर मैं देख न पड़ती, तो क्या मुँह खोलकर अम्मा से इतना भी नहीं कह सकते थे कि कहाँ है सरोज! मैं उसे देखने आया हूं।"

चालाकी को लक्ष्य कर कमलेश्वरी गम्भीर होकर बोली—"अभी से साझा-वाझा सोचने लगा, शैतान। यह नहीं समझता की काम पड़ने पर जब रुपयों की कमी का सवाल उठता है, तब उसकी पूर्ति कहाँ से होती है और फिर कौन करता है ?"

सुरेश किसी विरोधी तर्क को जल्दी न मानता था। दूसरा पक्ष न देखकर वह झट अपने उद्योग की कील जड़ने लग जाता। उसने कह दिया—"अच्छा चौथाई ही सही। जाओ, दो आने पर समझौता करता हूं।"

थाल के ऊपर रेंगती हुई कमलेश्वरी की तर्जनी रुक गई। सुरेश की बात सुनकर वह मुस्कराती हुई बोली—"ऐसा ही है, तो दो आने पैसे ले लेना।"

सुरेश चला गया। वह उस समय यह सोचता हुआ बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि पीछे पड़ जाओ तो सफलता अवश्य मिलती है।

हेम पत्र लिख चुका था। वह निःश्वास लेता हुआ सोच रहा था—'सरोज दूसरे की हो गयी है। अब उसे मुझसे मिलने-जुलने की क्या आवश्यकता है ? हो सकता है, वह अब मेरी छाया से भी दूर रहना चाहती हो। माना कि मैंने नहीं पूछा था—'कब आयी सरोज, अच्छी तो हो ?' पर उसको तो कुछ कहना चाहिये था। इतना ही पूछा होता--आजकल क्या करते रहते हो दद्दा ?' पर उसने मेरी ओर देखा तक नहीं।'

उसे फिर ध्यान आ गया—'वह दूसरे की हो गयी है।'

पर इस बात के ध्यान मात्र से हेम का समाधान न हुआ। उसे प्रतीत होता था, यह मुझे चुनौती दी गई है। मुझसे कहा गया है कि जीविकाहीन व्यक्ति होकर तुम कुछ नहीं हो।

परमेश्वरीलाल ने कह दिया —"अब इस पत्र को तुम्हीं लेते जाना हेम । रास्ते में कोई पत्र-पेटी मिलेगी ही, उसी में छोड़ देना ।"

हेम जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया । आग के साथ कड़ाह में, जैसे आम की छिली हुई फाँकें उछलती रहती हैं, अंतर् की ज्वाला में उसकी सारी देह वैसे ही उबल रही थी ।

इतने में परमेश्वरीलाल आश्चर्य के साथ बोले —"अरे, तुम तो चल दिये ! अपने मित्र की नौकरी ठीक होने की खुशी में मिठाई तो खाते जाओ ।"

हेम सोच रहा था—'मेरा कोई नहीं है, मैं कुछ नहीं हूँ । संसार के लिए मैं व्यर्थ हूँ । मैं यहाँ आया ही क्यों ?'

वह यह कहने ही जा रहा था कि मिठाई फिर मिल जायेगी, ऐसी जल्दी क्या है ? इतने में शरमाती-शरमाती सरोज पुन आकर बोली—'दद्दा, आपको अम्मा बुला रही हैं ।'

अभी क्षण भर पहले जो हेम अग्निकुण्ड में पड़ा जला जा रहा था, वही अब जैसे रत्नाकर की लहरों की कल्लोल राशि में जा पहुँचा ।

...देहरी के भीतर नतशिर खड़ी हुई सरोज हेम को आता देखकर एक पग पीछे हट गई । तब आगे-आगे अन्त.पुर को चला हेम, पीछे-पीछे और फिर बराबर साथ होती हुई तरंगित सरोज । एक क्षण दोनों मौन रहे, फिर सरोज का धैर्य टूट गया । बोली —"इतनी देर से दरवाजे पर बैठे हो । धड़धड़ाते हुए अन्दर नहीं आ सकते थे ? आँगन में जा पहुँचने पर अगर मैं देख न पड़ती, तो क्या मुँह खोलकर अम्मा से इतना भी नहीं कह सकते थे कि कहाँ है सरोज ? मैं उसे देखने आया हूं ।"

सरोज की वात सुनकर हेम का सारा रोष मिट गया। उसका लोक-परलोक मिलकर जैसे एकाकार हो उठा हो। एकाएक एक प्रश्न मन की धरती पर अंकुर की भांति फूट निकला --'तो क्या अब भी सरोज मेरी बनी हुई है।'

थोड़ी-सी भी सफलता आशा के उद्यान में कल्पना के दीपोत्सव मनाने लगती है। क्षोभ का ज्वार शान्त हो जाता है और भावना की तरंगें आप-से-आप उदार हो उठती हैं।

मन का उद्वेलन छिपाकर गम्भीरता के साथ हेम ने कह दिया—"तुमको अव ऐसा कुछ सोचना नहीं चाहिए, सरोज। यथार्थ के मोड़ पर आकर हमारे जीवन-मार्ग अलग-अलग हो गये हैं।"

सरोज सहसा खड़ी हो गई, हेम भी ठिठुक गया।

बरोठे में सरोज ने हेम की आँखों में आँखें डालते हुए सम्यक् आश्चर्य से कह दिया —"हमारे जीवन-मार्ग अलग-अलग हो गये हैं, यह तुम कह रहे हो ?"

हेम ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"हाँ सरोज, वात कुछ ऐसी ही है।"

आँगन तक पहुँचने वाले द्वार पर पहुँचकर सरोज ने —जैसे कोई नई वात हो—तत्काल आगे वढ़ते हुए कह दिया —"अम्मा, हेम दद्दा दरवाजे से ही लौटे जा रहे थे।"

कमलेश्वरी रसोई के गवाक्ष से झांकती हुई वोली —"बैठो-बैठो बेटा, मैं अभी आई।"

सरोज के रंग-ढंग से हेम ने अनुभव किया—'उसमें कहीं कुछ नहीं वदला है। मेरे लिए जो स्थान उसके मन में वना हुआ था, जान पड़ता है वह ज्यों का त्यों सुरक्षित है।'

आँगन के उस पार बरामदे में एक चारपाई खड़ी थी। बिस्तर उसके ऊपर रक्खा हुआ था। सरोज ने उसे बिछाकर बिस्तर उसके सिरहाने रख दिया। फिर स्वयं एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठती हुई बोली—"बैठो न, खड़े क्यों हो?"



हेमचन्द्र चारपाई पर बैठ तो गया, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह सरोज से बात करे तो क्या करे? उससे कुछ पूछे भी तो क्या?

तब उसके मन में आया—'हो सकता है, सरोज अपने आप में न बदली हो। पर ऐसा भी तो हो सकता है कि उसको इस दशा में देखकर मुझ में ही परिवर्तन होना शुरू हो गया हो।' तभी कमलेश्वरी कोठरी से एक बोरा उठा कर उसे कमरे के फर्श पर डालती हुई हेमचन्द्र के पास आ बैठी।

हेम ने सरोज की माँ के चरणों की रज मस्तक से लगा ली, फिर स्थिर चित्त से कहा—"कहो चाची, प्रसन्न तो हो? सरोज ससुराल से लौट आयी। उसको वहाँ कोई शिकायत तो नहीं? मुझे तो ये बातें सरोज बतलाने से रही, इसलिए तुमसे पूछ रहा हूं।"

"सुखी रहो बेटा", आशीर्वाद के स्वर में कमलेश्वरी ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—'सब ठीक ही है बेटा। समधी के यहाँ किसी बात की कमी तो है नहीं।"

वह जानती थी कि हेम इस विवाह से दुःखी अवश्य होगा। पर विधि के विधान पर उसका कोई वश न था। अतः उसने साधारण रूप से उत्तर दे दिया।

कमलेश्वरी के इस कथन के पूर्व ही सरोज कमरे के अन्दर चली गई थी। हेम अपनी स्थिति सम्हालते हुए बोला "जब बहुत अधिक

: २ :

हेमचन्द्र के साथ परमेश्वरीलाल का एक विचित्र प्रकार का स्नेह-सम्बन्ध था। उनकी कल्पना में एक मनोहर निराशा थी। वह कुछ इस प्रकार का नाता था, जो हो तो नहीं सका था, पर हो सकता था।

संसार में स्नेह, सौख्य और आनन्द की जो भी सत्ता है, उसका सम्बन्ध हमारी उसी स्थिति के साथ होता है जो हमारे वातावरण में सुलभ तथा सर्वथा अनुकूल होती है। पर यह स्नेह-सम्बन्ध केवल उस सम्भावना के साथ था, जो सिद्धि को तो प्राप्त न हो सकी, पर हो सकती थी। जितना कुछ सौख्य उन्हें भगवान् से मिला था, उसमें उनको कोई असन्तोष न था। पर जो मिल सकता था, किन्तु विधि के विधान में मिला नहीं, उसी का एक सुषुप्त मोह बना हुआ था। न तो व्यावहारिक रूप में उसका कोई महत्त्व था, न चरितार्थ होने की सम्भावना में कहीं कोई प्रगति ही थी। यह एक ऐसा प्रमाद था, जो शान्त होना न जानता था। यद्यपि वे जानते थे कि अब इस स्थिति में सब व्यर्थ है, दुर्वह है। फिर भी उसकी स्मृति अन्तश्चेतना से जाती न थी।

सुदूर अतीत की बात है यौवनागम में जब एक दिन परमेश्वरीलाल के विवाह की चर्चा चली थी, तभी इलाहाबाद के एक बड़े आदमी की लड़की के साथ उनका विवाह होते-होते रुक गया था। पिता कुछ

गर्मी पड़ती है, तब वर्षा कितनी प्यारी लगती है ! इस भाँति, जब लड़की सयानी हो जाती है, तब उसका विवाह हो जाने से सबको बड़ी शान्ति मिलती है। सचमुच आज मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है चाची। सरोज ससुराल में पूर्ण सुखी और संतुष्ट रहे, भगवान् से यही मेरी प्रार्थना है।"

कमलेश्वरी बोली—"बस बेटा, इससे बढ़कर सुख हमारे लिये और क्या हो सकता है !"

हेम भावुकता में आकर जो कुछ कह गया, उससे वह अपने आप में एक गौरव का अनुभव करने लगा। किन्तु सरोज सोच रही थी— 'यह असत्य है, यह मिथ्या को अनुचित महत्व देना है।'

इतने में सुरेश बाजार से मिठाई लेकर आ पहुँचा।

थोड़ी देर बाद बरामदे में बैठा हेम जब जलपान कर रहा था, तब अन्दर के कमरे में खिड़की के निकट मौन खड़ी सरोज वर्षा की रिम-झिम फुहार देख रही थी।

हेमचन्द्र के साथ परमेश्वरीलाल का एक विचित्र प्रकार का स्नेह-सम्बन्ध था। उसकी कल्पना में एक मनोहर मिठास थी। वह कुछ उस प्रकार का नाता था, जो हो तो नहीं सका था, पर हो सकता था।

संसार मे स्नेह, सौख्य और आनन्द की जो भी सत्ता है, उसका सम्बन्ध हमारी उसी स्थिति के साथ होता है जो हमारे वातावरण मे सुलभ तथा सर्वथा अनुकूल होती है। पर यह स्नेह-सम्बन्ध केवल उस सम्भावना के साथ था, जो सिद्धि को तो प्राप्त न हो सकी, पर हो सकती थी। जितना कुछ सौख्य उन्हे भगवान् से मिला था, उससे उनको कोई असतोष न था। पर जो मिल सकता था, किन्तु विधि के विधान मे मिला नहीं, उसी का एक सुपुप्त मोह बना हुआ था। न तो व्यावहारिक रूप से उसका कोई महत्त्व था, न चरितार्थ होने की सम्भावना में कहीं कोई प्रगति ही थी। यह एक ऐसा प्रमाद था, जो शान्त होना न जानता था। यद्यपि वे जानते थे कि अब इस स्थिति में सब व्यर्थ है, दुर्लड्य है। फिर भी उसकी स्मृति अन्तश्चेतना से जाती न थी।

सुदूर अतीत की बात है, यौवनागम में जब एक दिन परमेश्वरीलाल के विवाह की चर्चा चली थी, तभी इलाहाबाद के एक बड़े आदमी की लड़की के साथ उनका विवाह होते-होते रुक गया था। पिता कुछ

ही प्रकृति के थे। इसीलिए उन्होंने तुरन्त उनका विवाह-सम्बन्ध अन्यत्र तय कर लिया। फलतः उसी मास के भीतर उनका विवाह हो गया। यह विवाह हो अवश्य गया और परमेश्वरीलाल ने उसमें कोई आपत्ति भी नहीं उठाई, पर कई वर्षों तक वे यह बात न भूल सके कि इलाहाबाद के एक वकील साहब की लड़की जाह्नवी के साथ यह सम्बन्ध होता, तो क्या बात थी!

दिन चलते गए और परमेश्वरीलाल का गृहस्थ-जीवन भी आगे बढ़ता गया। फिर यह स्मृति भी धुँधली पड़ती गई। कभी उन्होंने इस बात का पता नहीं लगाया कि जाह्नवी का विवाह कहाँ हुआ है। वे जब कभी अपनी पत्नी कमलेश्वरी देवी के साथ सभा-समाज अथवा सिनेमा देखने जाते, तब कभी यह बात कल्पना में भी न आती कि जाह्नवी इसी नगर में हो सकती है। यद्यपि जब कभी लौटते समय मूलगंज के चौराहे पर से लाटूशरोड की ओर घूमने लगते, तब आगे वाले तांगे पर बैठा हुआ एक दम्पति उन्हें अवश्य आकृष्ट करता; तथापि उसका परिचय प्राप्त करने की उन्होंने कभी चेष्टा नहीं की। उनके अन्तर्मन में यही एक उदासीन भावना सदा बलवती बनी रहती थी कि होंगे कोई, अपने को क्या! संसार में ऐसे दम्पतियों की कमी नहीं। फिर अकारण किसी से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता भी क्या है!

एक दिन की बात है। वह इलाहाबाद से कानपुर आ रहे थे। द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में स्थान की कुछ कमी थी। अतः डिब्बे में बैठी एक युवती से उन्होंने निवेदन किया—"बहिन जी, अगर आप थोड़ा उधर हो जायँ, तो मुझे बैठने भर का स्थान मिल जाय।" इतना कहते-कहते परमेश्वरीलाल ने उस युवती के मुँह को ध्यान से देखा तो उन्हें एक धक्का-सा लगा क्यों कि उसे तो कई वर्षों से वे कानपुर

नें एक सौभाग्यवती नारी के रूप में देखते आ रहे थे।

उस युवती की अवस्था अभी पचीस की ही हो पायी होगी। सोने की दो चूड़ियाँ मात्र उसके दायें हाथ में पड़ी हुई थीं। बायें हाथ में एक कलाई घड़ी थी और गले में एक पतली सोने की जंजीर। इसके अतिरिक्त सारी वेश-भूषा कुछ अवश्य सादी की थी। न माँग में सिन्दूर पोषित था, न भाल में ही कुंकुम बिन्दी। हाँ, केश-विभाजन की रेखा से इतना अवश्य प्रकट होता था कि कन्धे का उपयोग ठीक ढंग से किया गया है।

स्थान रिक्त होने पर परमेश्वरीलाल जब उसी बर्थ पर बैठने लगे, तो जाह्नवी ने क्षेम को अपनी दायीं ओर से बायीं ओर कर लिया और क्षेम को पूर्ववत् खड़ा रहने दिया। परमेश्वरीलाल ने लक्ष्य किया कि इस नारी ने इस बच्चे को इसलिये यहाँ बिठा लिया है कि हमारे बीच में कम-से-कम बच्चे का ही व्यवधान पड़ जाय।

अब भी परमेश्वरीलाल को यह पता न था कि यह नारी है कौन? और वह भी उनके नामादि से बिल्कुल परिचित न थी।

जाह्नवी के पिता इलाहाबाद के नामी वकीलों में थे। यहाँ तक कि उनके नाम पर वहाँ एक गली अब तक बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त वे नगरपालिका के भी एक प्रतिष्ठित सदस्य थे।

संयोग की बात, डिब्बे में बैठे हुए कुछ व्यक्ति उन्हीं के सम्बन्ध में बातें करते हुए कह रहे थे— इधर दस वर्षों से तो ऐसा कोई ... वाली सदस्य नगरपालिका में था नहीं, जो अपने निर्वाचन-क्षेत्र से इतने बड़े बहुमत के साथ चुना गया हो।"

इतने में वहीं किसी ने कह दिया—'किन्तु कितने दुःख की बात है कि बेचारे अल्पावस्था में ही न रहे। सुनते हैं ...

लड़की मात्र वे अपने पीछे छोड़ गये हैं। बच्चे अभी पढ़ रहे हैं। लड़की का विवाह हो गया था; किन्तु दुर्भाग्य से वह भी विधवा हो गई। अभी कल मालूम हुआ कि हाल ही में वह कानपुर के किसी इण्टर-कालेज में अध्यापिका हो गयी है।"

अपने ही प्रसंग की इन बातों को सुनकर जाह्नवी की आँखों में आँसू भर आये। इतने में एक व्यक्ति ने, उसकी डबडबाई हुई आँखों पर दृष्टि डाल, कुछ संदेह के साथ कह दिया—"बहिन जी, क्या आप को हम लोगों की इन बातों से कोई दुःख पहुँचा है ?"

जाह्नवी ने आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया—"जिनकी आप लोग बात कर रहे हैं, वह मेरे पूज्य पिता थे।"

जाह्नवी की इस बात को सुनकर सब लोग एक दम से अवाक् रह गये। उस व्यक्ति ने दबे हुये स्वर में कहा—"बहन जी, हम लोगों को अब तक यह बात मालूम न थी कि आप उन्हीं वकील साहब की पुत्री हैं। मुझे बड़ा खेद हो रहा है कि मेरे कारण, अकारण आपको कष्ट हुआ।"

एक क्षण के मौन के बाद वह व्यक्ति पुनः बोल उठा—"आपने भी स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् स्वावलम्बन का मार्ग ग्रहण कर बड़े साहस का परिचय दिया है। आपने इस प्रयत्न से अपने ही नहीं, अपने पूज्य पिता के गौरव की भी भली-भाँति रक्षा की है।"

जाह्नवी ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया—"मैंने कुछ नहीं किया। मैं अकेले कर ही क्या सकती थी! भगवान् की इच्छा के बिना पत्ता तक तो हिल नहीं सकता। अकस्मात् जब मेरे ऊपर यह वज्रपात हो गया, तब उसी वर्ष मैं ट्रेनिंग कालिज के चुनाव में आ गई। उसके बाद एल० टी० कर लेने पर भगवान् की कुछ ऐसी कृपा हुई कि तुरन्त मुझे

एक उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय में शिक्षण-कार्य मिल गया।"

तभी वे साहब बोले —"सुनते हैं, आपके पति नंदनंदन बाबू भी नगर के श्रेष्ठ वकीलों में से थे।"

अब परमेश्वरी बाबू को स्मरण हो आया कि इस सद्यः विधवा नारी के पति कौन थे। उनकी प्रशस्ति को सुन कर उनको कुछ ईर्ष्या-सी हो उठी।

सामने पड़े हुए दहकते अंगार से बचना सरल है, पर राख में छिपी हुई चिनगारियों से बचना दुष्कर है।

गाड़ी चली जा रही थी और अंग्रेज़ी का एक दैनिक-पत्र हाथ में लिए हुए वे सोच रहे थे—'जो भी हो, जाह्नवी के साथ बच्चा की माँ की कोई तुलना नहीं।'

दायीं ओर क्षेमचन्द्र लेटा हुआ था। बायीं ओर बैठा हुआ हेमचन्द्र कभी कभी माँ की ओर लपककर पूछने लगता—"अम्मा, कानपुर तब पहुँचेंगे?"

जाह्नवी ने उसकी तोतली बात सुनकर उत्तर में कह दिया—'गाड़ी को कानपुर पहुँचने में देर लगेगी हेम। अब तुम सो जाओ।'

आँख मींचते हुए हेम ने परमेश्वरीलाल की ओर पैर फैला दिये। फिर पलक उठाकर धीरे से वह बोला—"अब हम छोयेंदे।"

हेमचन्द्र के पैर का लाल जूता परमेश्वरीलाल के वस्त्रों को थोड़ा छूने लगा, तो जाह्नवी ने उसका पैर समेटने का प्रयत्न करते हुए कह दिया—"दूसरों के शरीर से अपना कोई अंग छूने नहीं देना चाहिए हेम! और तुम्हारा पैर अभी इन बाबू साहब के कपड़ों से छुआ जा रहा था।"

एक साधु की भाँति परमेश्वरीलाल ने जाह्नवी की ओर उन्मुख होकर कह दिया—"कोई हर्ज नहीं, बचा है।" फिर हेम की ओर देख सीधे उसी से बोल उठे—"अच्छी तरह से पैर पसार लो।"

कथन के साथ वे सोचने लगे ‘हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह रूढ़िवादी समाज है। नहीं तो जाह्नवी के साथ क्या अब भी मेरी आत्मीयता हो नहीं सकती कि निभ नहीं सकती?'

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"ठीक है, ठीक है। इतनी ही जगह में सो जायेगा।" और कथन के साथ ही उसने हेम को अपनी ओर खींच लिया।

इलाहाबाद से गाड़ी प्रातःकाल साढ़े आठ बजे के लगभग चलती थी। सर्दी के दिन थे। ग्यारह बजे के लगभग ट्रेन जब फतेहपुर में रुकी, तो जलपान-कक्ष के बैरे को सामने देख परमेश्वरी-लाल ने चाय टोस्ट और बिस्किट लाने का आदेश दिया। जाह्नवी बच्चों के लिए अपने साथ खाना ले आयी थी। खाद्य सामग्री के कटोरदान को खोलकर वह एक तौलिये पर दोनों बच्चों के लिए खाना रखने लगी।

परमेश्वरीलाल टोस्ट के टुकड़ों पर मक्खन लगा रहे थे। क्षेमचन्द्र कभी सीट पर बैठता और कभी नीचे उतर जाता। एक बार मठरी खाता-खाता, जब वह परमेश्वरी बाबू के सामने आ पहुँचा, तो उन्होंने मक्खन लगे हुए टोस्ट का वही टुकड़ा उसके आगे बढ़ा दिया। क्षेम ने उसकी ओर हाथ बढ़ाये बिना तुरन्त घूमकर माँ की ओर कुछ ऐसी दृष्टि से देखा, मानो उसकी स्वीकृति के बिना किसी तरह वह टोस्ट ले न सकेगा।

इतने में कहीं हेम के मुँह से निकल गया—"तोछत थाना वो नहीं

थोड़ी देर में कानपुर आ गया। यात्री गाड़ी से उतर-उतर कर अपने-अपने स्थान को जाने का उपक्रम करने लगे। दो मिनट बाद जब जाह्नवी अपना बैंडिग, एक भारी ट्रंक, सूटकेस, बर्तनों से भरा बोरा, टिफिन कैरियर आदि सामान दो कुलियों के ऊपर लदवाकर दोनों बच्चों की अंगुलियां पकड़े हुए चल दी, तब परमेश्वरीलाल का कुली भी उनका सामान लादे हुए जाह्नवी के पीछे हो गया।

क्षेम अब जाह्नवी की गोद में था। उसका मुख सीढ़ियों के उतार की ओर था। परमेश्वरीलाल नीचे की सीढ़ी पर हैट लगाये हुए चढ़ रहे थे। क्षेम ने हाथ बढ़ाकर उनका हैट पकड़ लिया। जाह्नवी ने झट उसका हाथ हटाते हुए कह दिया—"किसी की चीज इस तरह छूआ नहीं करते।" तब तक परमेश्वरी बाबू बोले—"कोई बात नहीं। बच्चों को सब अधिकार है।" मुस्कराती हुई जाह्नवी बोली—"धन्यवाद।"

फाटक पर जो युवक टिकिट ले रहा था, उसकी नियुक्ति हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। कर्त्तव्य के निर्वाह में कठोरता का स्तर कहीं से भी विनत न हो पाया था। एकाएक उसने देखा, जिस महिला के पास केवल डेढ़ टिकिट है, उसका सामान पूरी गृहस्थी का है। अतः उसने कुली को रोकते हुए पूछा—"किसका सामान है?"

जाह्नवी ने फाटक के बाहर से घूमते हुए उत्तर दिया—"मेरा।"

टिकिट-बाबू ने पूछा—"इसे बुक नहीं करवाया?"

तब तक परमेश्वरी बाबू वहां जा पहुँचे। उन्होंने आगे बढ़कर कह दिया—"बुक करवाने की आवश्यकता नहीं समझी गई; क्योंकि जिस डिब्बे में ये थीं उसी डिब्बे में बाद में संयोग से मैं भी आ गया। और मेरे साथ जितना सामान हो सकता था, उसकी अपेक्षा—आप

देख ही रहे हैं—बहुत कम है।"

तत्काल प्रश्न हो उठा—"आपका टिकिट ?"

परमेश्वरी बाबू ने टिकिट आगे बढ़ाते हुए कह दिया—"बड़े खेद की बात है कि आप एक संभ्रान्त महिला को जान-बूझकर अपमानित करते हुए जरा भी नहीं हिचकते !"

"इसमें अपमान की क्या बात है ? सामान अधिक होने पर इसका किराया वसूल करने के लिए यात्री को रोक लेना मेरा कर्तव्य है। और जब आपने बाद में टिकिट लिया है, तब आप इनके साथ होने का दावा कैसे कर सकते हैं ?"

"साथ होना एक साथ टिकिट लेने पर निर्भर नहीं है, जनाब। दो घरों से अलग-अलग चलने पर भी रास्ते में हम एक साथ हो सकते हैं और एक ही घर से, एक साथ चलने पर भी, रास्ते में अलग हो सकते हैं।"

यह उत्तर ऐसा सटीक था, जिसने एक ओर टिकिट-बाबू को प्रभावित कर दिया, दूसरी ओर जाह्नवी को।

इस बीच फाटक पर यात्रियों की भीड़-भाड़ बहुत बढ़ गई। इतने में संयोग से एक साहब ने कह दिया—"जाने दीजिये साहब। मामले में कुछ भी दम नहीं है।" टिकिट बाबू ने एक बार उनकी ओर दृष्टि डालकर किंचित मुस्कराते हुए कह दिया - "जाइये !"

कुली आगे बढ़ गया और परमेश्वरीलाल उसके साथ होते-होते जाह्नवी के बराबर चलने लगे। पहले तो जाह्नवी क्षण भर मौन रही। फिर उसे कहना पड़ा "आप ने तर्क अच्छा पेश किया। इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।"

"हूँ-हूँ। धन्यवाद देने की इसमें क्या आवश्यकता है ? एक सह-यात्री होने के नाते मुझे ऐसा करना ही चाहिए था।"

फिर भी मैं इसे आपकी कृपा ही समझूँगी।"

"यह आपकी शालीनता है।"

फिर एक मौन। मौन ऐसा, जो अपनी ओर खींचता है। इससे विदित होता है कि वार्ता अपना प्रभाव डाल रही है। अन्तर्वाणी से कुछ स्वर फूट पड़े हैं।

संकुचित जाह्नवी आगे बढ़ गई थी। पुल की सीढ़ियों से ही रिक्शेवाले पूछने लगे—"माताजी, रिक्शा चाहिए ?" जाह्नवी ने उत्तर दिया—"नहीं।" फिर वह नीचे आ गई। उसी रिक्शावाले ने परमेश्वरीलाल से पूछा—"बाबू जी रिक्शा चाहिए ?" उन्होंने भी उत्तर दिया—"नहीं।"

जाह्नवी आगे बढ़कर तांगा तय करने लगी, तो परमेश्वरी बाबू पास आकर बोले—"मुझे अब आज्ञा दीजिये" और साथ ही क्षेम के बायें कपोल को अपनी तर्जनी से स्पर्श करते हुए कहने लगे—"बिस्किट खाने मेरे घर नहीं चलोगे ?"

जाह्नवी ने क्षेम के हाथ जोड़कर कह दिया—"मामाजी को नमस्ते करो।"

क्षेम ने हाथ जोड़कर मस्तक से लगा लिए और हेम अपने आप बोल उठा—"नमछ्ते मामादी।"

परमेश्वरीलाल कुछ गम्भीर हो उठे; फिर भी बोले—"जियो-जियो, हजार वर्ष जियो।"

तभी जाह्नवी ने कह दिया—"मैं पुनः आपको धन्यवाद देती हूं।"

परमेश्वरीलाल ने इस बार धन्यवाद पर ध्यान न देकर पूछा—"आप तो शायद हमारे मुहल्ले के पास ही कहीं रहती हैं।"

"जी, देवनगर में।"

"मुझे मालूम था। अच्छा इस समय तो हम विदा होते हैं। आशा है, फिर भेंट होगी।"

जाह्नवी ने उनकी इस बात पर ध्यान न देकर ताँगे की ओर देखा। सामान उस पर लद चुका था। फिर अपने साथ उसने बच्चों को भी ताँगे पर बैठा लिया।

अब आगे-आगे चला परमेश्वरीलाल का रिक्शा, उसके पीछे जाह्नवी का ताँगा।

पथ एक था, पथिक दो। जाह्नवी सोच रही थी—'स्वच्छ अन्तःकरण एक कमल-पत्र के समान होना चाहिए, जिस पर एक भी जल-बिन्दु ठहर न पाये।' और परमेश्वरीलाल के मन में आ रहा था—'गीता में भगवान् कहते हैं—योग का अर्थ है कर्म करने का कौशल।'

: ३ :

भवानीदत्त की अवस्था अब सत्तर वर्ष की हो चुकी थी। शरीर सूख गया था और चलने-फिरने का बल भी अब बहुत क्षीण पड़ गया था। लकवा मार जाने के कारण बायाँ अंग रक्त-मांस रहने पर भी निर्जीव हो गया था। सहारा पाये बिना चल-फिर न सकते थे। आँखों की ज्योति कुछ कम अवश्य हो गई थी; किन्तु निकट आये हुए व्यक्ति की रूप-रेखा देखकर उसे पहचान लेते थे। अधिक जोर से तो न बोल पाते थे, किन्तु चारपाई पर पड़े-पड़े दस-बीस मिनट लगातार बोल सकते थे। भोजन अब एक ही समय करते थे। सो भी गेहूँ का दलिया, मूँग की दाल, तोरई या पालक का साग। घी केवल दाल या साग में लेते, केवल बघार में, ऊपर से नहीं। रात में केवल पाव भर दूध लेते। बचपन में सवेरे कभी उठ न पाते थे। पर अब पाँच बजते ही बड़बड़ाने लगते—जो आदमी सूर्योदय से पहले नहीं उठ सकता वह सदा दरिद्र-रहता है। बाप-दादे की कमाई अगर पास-पल्ले रहती भी है, तो उसे नष्ट होते देर नहीं लगती। "अरे बिस्नू की माँ, प्रेम उठा कि नहीं ?"

उत्तर मिलता—"बारह बजे तो वह घर आया है। भला इस समय कैसे उठेगा ?"

"हाँ, तब तो···।"

बात बीच में ही अधूरी छूट जाती। तब बिना बोले मन-ही-मन

अपने आप सोचते रहते—'यही एक लड़का मैंने पैदा किया है। बाकी तो सब नालायक हैं। यों गलतियाँ मैंने भी बहुत की हैं।'

झुर्रियों भरे मुख पर मुस्कान झलकने लगती है—(कई विवाह कर डाले और कितने बच्चे पैदा किये। भगवान् की लीला—स्त्रियाँ मरती गईं। न विवाह होने देर लगी और न उनसे बच्चे पैदा होने में। लोग आश्चर्य करते हैं—और बात है भी आश्चर्य करने की। जिनकी गोद में एक भी लाल नहीं है, उनके दृष्टिकोण से मुझसे अधिक सुखी दूसरा कोई व्यक्ति इस संसार में नहीं।

पहली स्त्री का नाम था एकादशी। उससे दो बच्चे पैदा हुए, राधे-गोविन्द और सत्यवती। एकादशी से माँ की पटती न थी। अमीर घर की लड़की थी, परिश्रम का काम उससे होता न था। फिर भी किसी तरह करती थी। मन में न होता, तो बेमन करती। किये बिना चारा न था। भवानी बाबू को कभी उलाहना देती, तो वे स्पष्ट कह देते—"जितना हो सके, उतना करती जाओ। शिकायत कभी मुख से मत करो माँ की।"

आँखों में आँसू भर आते हैं, पर कण्ठ खोलना नहीं जानते—'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।' चारपाई पर लेटे-लेटे बिच्छू काटने का-सा दर्द बदन में होता रहता है। वे बातें बीत गई हैं, वह जीवन बीत गया है, वे प्राणी नहीं रहे वे दिन चले गये—एकादशी उस दिन फूट-फूटकर रोई थी। क्योंकि एक पुरानी पतीली मलते-मलते उसकी पैनी कोर से हथेली चिर गई थी और दस बारह बूँद रक्त भी गिरा था। स्मृति-कल्पना के धुंधले पट पर हाथ में बँधी हुई कपड़े की सफेद पट्टी अब तक याद आ रही है। एक सप्ताह भी न होने पाया था कि उसका भाई गोकुलचन्द्र उसे लेने आ पहुँचा। एकादशी उसके साथ चली गई थी। वहीं राधेगोविन्द पैदा हुआ था।

व वह साल भर का हो गया, तब भवानी बाबू उसको किसी तरह समझा-बुझाकर घर ले आये। इस बार उन्होंने एक नौकरानी रख ली।

लेकिन फिर माँ ने शिकायत की—"यह नौकरानी तो कामचोर है। बर्तनों में जूठन छोड़ जाती है। और चमक तो कभी उन पर आती ही नहीं!"—माँ ने शिकायत की, तो उसने जवाब दिया—"एक आपका घर थोड़े ही है, जो बर्तन मलने में सारा दिन यहीं लगा दूँ। पाँच घरों की सेवा-टहल करती हूँ, तब कहीं निर्वाह होता है। तीन रुपये में और कितना काम लेना चाहते हो! एक घंटे से ज्यादा समय मैं नहीं दे सकती।"

उसका इतना कहना था कि भवानी की माँ ने क्रोध में आकर नौकरानी से कह दिया "अपना हिसाब ले जा। मैं ऐसी मुँहजोर नौकरानी की शकल नहीं देखना चाहती!"

परिणाम यह हुआ कि एकादशी पर फिर दासी-कर्म का भार आ पड़ा। राधेगोविन्द गोद में था और सत्यवती गर्भ में आ चुकी थी। इतने में गोकुलचन्द्र बाबू फिर आ पहुँचे और एकादशी पुनः मायके चली गई। यद्यपि इससे पूर्व भी वह असंतुष्ट होकर गई थी, लेकिन जाने के बाद पत्रों का उत्तर वह देती रहती थी। पर इस बार उसने ऐसा नहीं किया। जब दो महीने हो गये और उसका कोई पत्र नहीं आया, तो भवानी बाबू ने समझ लिया कि वह रूठ गई है। परिणाम यह हुआ कि उसे मनाने के लिए उन्हें ससुराल जाना ही पड़ा।

भवानी बाबू ने अनुभव किया कि एकादशी के साथ अन्याय हो रहा है, यद्यपि वे स्वयं यह अन्याय नहीं कर रहे हैं। कौन कर रहा है, यह स्पष्ट था। लेकिन भवानी बाबू जानते थे कि क्रोध की मात्र

माँ में कितनी प्रबल है। उनके पिता जीवित न थे, वे भी यदि उनका पक्ष न लेते तो माँ के स्वाभिमान की रक्षा कौन करता ? वे चाहते तो संकोच त्याग कर उनसे कह सकते थे—"बड़े घर की बेटी है; इसलिए दासी-कर्म उससे नहीं हो सकता। नौकरानी रखनी ही पड़ेगी।"

सोचते हुए आँसू रुक नहीं पाते। इस व्यवस्था को कौन समझेगा! मन होता था कि माँ से स्पष्ट कह दूँ ; पर बात मुँह पर आते-आते अटक जाती थी। होंठ खुलते-खुलते रह जाते थे। ऐसी बात भला माँ को सहन हो सकती थी!

करवट बदल लेते हैं—'अब इन बातों को सोचने में कोई लाभ नहीं'—"अरे बिस्सू की माँ ? नहीं सुना बात पड़ता है।" जोर से बोल उठते हैं—"अरे मैं कहता हूँ, कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है ?"

बिस्सू की माँ निकट आ गई। अवस्था यही कोई चालीस-पचालीस, गौर वर्ण, शरीर से तन्वगी। आँखों पर चश्मा सुनहरे फ्रेम का है। सबसे छोटा बेटा विश्वनाथ भी सोलह का तो होगा ही। लेकिन पत्थर पर एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर उन्हें शुभ्र अरुण रखने का उत्साह ज्यों का त्यों बना है। पान खाने की आदत अब तक नहीं गई। आधे भाल तक अवगुण्ठन खिसकाकर छालिया मुँह में डाले चारपाई के पास खड़ी हो गई। बोली—"क्या कह रहे थे ?"

भवानी बाबू ने संकेत से कह दिया—"बैठो न एक-आध मिनट को।"

चटाई फर्श पर पड़ी थी। उसी पर बैठती हुई वे बोलीं -"बैठकर क्या करूँ, बोलो ?"

एक निःश्वास लेकर भवानी बाबू बोले—'अम्मा को मरे हुए

कितने दिन हुए होंगे भला ?"

"यही कोई बीस वर्ष। मेरा गौना होकर ही आया था।" बिस्सू की माँ ने उत्तर के साथ प्रश्न कर दिया —"मगर आज तुम्हें अम्मा का स्मरण कैसे हो आया ?"

आँखों में आँसू भर आये। रुँधे हुए गले से बोले —"मन ही तो है बिस्सू की माँ ! आजकल नौकरानी आठ रुपये मासिक लेती है। एक समय था, अम्मा ने तीन से सवा तीन देना भी स्वीकार नहीं किया था। एकादशी का हाथ चिर गया था; क्योंकि पतीली की कोर कुछ पैनी थी !"

"इस तरह सोचोगे, तो तुम्हारी तबियत और खराब हो जायेगी।" बिस्सू की माँ कहती हुई उठ कर चल दी और अतीत काल की स्मृतियाँ फिर एक-एक कर भवानी बाबू के समक्ष आने लगीं।

—हाँ, तो जब मैंने कहा—"आज मुझे मकनपुर जाना है।" माँ उस समय चावल बीन रही थीं, एकाएक बोल उठी थीं —"हाँ, दुलहिन के पैर नहीं पड़ोगे, तो रात में नींद कैसे आयेगी !" मैंने माँ को इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने सोचा —'ऐसे समय बुद्धिमानी इसी बात में है कि मैं मौन रहूँ। कठोर बात का उत्तर उससे भी अधिक कठोर बात कहना नहीं, वरन् विनत मूक धैर्य है।'

मैं जब गाड़ी पकड़ने स्टेशन पहुँचा, तो माँ के प्रति मेरे मन में जरा भी क्षोभ नहीं था। थी एक दया कि हमारे समाज की देवियाँ अशिक्षित होने के कारण सभ्यता से कितनी दूर रहती हैं। अपना राग-द्वेष छिपा तक नहीं सकतीं। माँ की वाणी में इतना भी संयम नहीं कि ऐसी बातें मुझसे तो न करतीं !

मैं एकादशी से जाकर मिला। मैंने उसे बहुत समझाया कि तुम चलो, मैंने एक दूसरी नौकरानी तै कर ली है। वह बड़ी सहनशील है। वह काम नहीं छोड़ेगी। लेकिन एकादशी न मानी। उसका कहना था "अब मैं माँ के साथ नहीं रह सकती। उनकी बातें मुझे पसन्द नहीं आतीं। सहनशीलता तो उनमें है ही नहीं। उन्हें किसी का काम पसन्द ही नहीं आता। उन्हें मेरी बनाई रोटी पसन्द नहीं आती —'परांठे तुम कभी मत बनाया करो। तुम से घी बहुत लगता है। तुम्हें चाय बनाने तक का शऊर नहीं। एक पैकेट दो दिन का होता है। कितनी चाय बर्बाद होती है! मैं एक चम्मच चाय की पत्ती में तीन कप चाय बनाती हूं। आज दाल में नमक ज्यादा हो गया। आज रोटियां इतनी कड़ी बनी हैं कि फेंक कर मारूं तो सर फट जाय'—और कपड़ों की धुलाई के सम्बन्ध में तो उनकी शिकायत हमेशा बनी रहती, धोबी को कपड़ा देना उनको पसन्द नहीं। वह कहा करती हैं—'यह भी कोई घर है, जहां स्त्रियों और बच्चों के कपड़े लाण्ड्री में जाया करते हैं!' मैं उनकी ऐसी बातें नहीं सुन सकती। मैं इन बातों को सहन नहीं कर सकती—नहीं कर सकती। मुझे अपनी माँ के साथ रहने के लिए विवश मत करो। नहीं तो...'

तब अपना-सा मुँह लेकर मैं लौट आया था। मुझे एकादशी से ऐसी आशा न थी। मैंने सदा यही सोचा है कि जिस स्त्री को पति प्यारा होता है, वह उसके घर को—उसके माँ, बाप, बहन, भाई, कुटुम्ब के समस्त प्राणियों को—प्यार करती है। घर की दीवारें, छज्जे, झोंपड़ी, छप्पर, खपरैल—धूल और धुआँ—सब कुछ उसे प्यारा होता है। मुझे कुछ भ्रम भी हो गया कि आखिर यह जिद एकादशी में पैदा कैसे हो गई।

माँ ने पूछा—"क्यों दुलहिन को ले नहीं आये?" मैंने उत्तर

दिया —"हां, नहीं ले आया। सर्दी के दिन हैं। सास ने कहा—राधे-गोविन्द के भाई होने वाला है। अब महीने-डेढ़-महीने के लिए क्या भेजूं।" मां ने उत्तर दिया —"साफ-साफ यह क्यों नहीं कह देते कि मेरे रहते अब दुलहिन यहां नहीं आयेगी। तुमको मैं क्या कहूं, कोई मर्द बच्चा होता, तो अब तक दूसरा विवाह करके दिखला देता।" मैंने इस वार भी सदा की भांति मां को कोई उत्तर नहीं दिया।

एक दिन मां को ज्वर आ गया। मैं दवाखाने से लौटकर आया, तो क्या देखता हूं कि एक लड़की कमरे के दरवाजे से लगी अगीठी पर परांठे सेंक रही है। हरी किनारी वाली डोरिये की धोती उसके वदन पर है और हरी रेशमी छींट का ही ब्लाउज। केश बहुत सावधानी से संवारे हुए हैं। आम की फांक से बड़े-बड़े विनत नयन हैं। स्नेह की दीप्ति के साथ नयनों का आयतन जो देखता हूं, तो मन नियंत्रण से बाहर हो उठता है।

ज्यां ही मैंने कमरे के अन्दर प्रवेश किया, वह एकदम से चौंक पड़ी। इधर-उधर धोती खींचते हुए उसने अपने आपको कुछ इस तरह समेट लिया जैसे मैं एक ही दृष्टि से उसका सब कुछ छीन लेने को आतुर हूं।

मैंने उससे तो कुछ नहीं कहा; लेकिन मां के मत्थे पर हाथ रख कर देखा, तो मुझे मालूम हुआ, सचमुच ज्वर बड़ा तीव्र है। मैंने कहा —"मैं वैद्यजी को लेने जाता हूं।"

वह बोलीं —"वैद्य की क्या जरूरत है ? मैं चली जाऊंगी।"

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—"कहां चली जाओगी ?"

उन्होंने आर्द्र कण्ठ से कहा—"वहीं, जहां तुम्हारे बाबू गये हैं।" और इस कथन के साथ वे रो पड़ीं।

यह उनमें एक आदत-सी पड़ गई थी। जब कभी वे बीमार पड़तीं, तो सदा इसी भांति घबरा उठती। यह कहते देर न लगती कि 'बस, इस बार नहीं बचूंगी।'

मैं वैद्य जी को लिवा लाया। उन्होंने दवा दी और दो-चार दिन बाद माँ की तबियत ठीक हो गई।

माँ की तबियत तो ठीक हो गई लेकिन मैंने प्रायः देखा कि धोती कहीं फट गई है, तो उसे सीने के लिए वही लड़की माँ के पास उपस्थित है। बुनाई का काम करना है तो ऊन के लच्छों और सलाइयों के साथ माँ के पास बैठी वही लड़की डोरे डाल रही है। एकाध बार मैंने देखा, कोई समाचार-पत्र या मासिक पत्रिका उसके हाथ में है। पिछवाड़े की खिड़की खुली हुई है। वहीं एक कुर्सी पड़ी है। माँ पलंग पर लिहाफ ओढ़े लेटी हुई है और यह लड़की बड़े मनोयोग से कुछ सुना रही है।

किन्तु सदा यही होता कि ज्यों ही मैं बाहर से भीतर जाता, त्यों ही वह लड़की झट कह उठती—"अब मैं जाऊँगी बुआ।"

माँ से कभी मैंने पूछा नहीं कि यह लड़की कौन है? लेकिन उसका एकाएक आतंकिता-हिरणी-सा चौंकना, सिकुड़ना, सिमटना और भागते हुए चौकड़ी भरना, कनखियों से देखना, फिर तुरन्त सावधान हो जाना, कुछ ऐसा मनोहर लगता, कि मैं एक स्वप्न देख रहा हूं।

इसी समय गोकुलचन्द्र भाई की चिट्ठी आ गई, जिससे विदित हुआ कि राधेगोविन्द के बहन हुई है। माँ ने सुना, तो मुंह बनाती हुई बोली—"चलो, एक डिगरी तो तैयार हो गई।"

उस दिन जब मैं खाना खाने बैठा, तो माँ उबल पड़ी। बोली

"अब एक नौकरानी चाहिए बर्तन मलने को और एक खाना पकाने को। मैं किसी की लौंडी-बांदी तो हूँ नहीं। मैंने बहुत किया, अब मुझसे नहीं होता।"

मेरे मुँह से निकल गया—"आखिर तुम्हारा मतलब क्या है, अम्मा।"

मां ने उत्तर दिया—"मतलब ? मुझसे मतलब पूछते हो ? दाई से पेट नहीं छिपता बेटा। मुझे सब कुछ मालूम है। और सच्ची बात यह है कि मैं इसमें कोई बुराई भी नहीं देखती। जब दुलहिन यहां आने को तैयार नहीं, तो इस लड़की को बहू बना लेने में क्या बुराई है ? मुन्नी की मां दो हजार तो अपने मुँह से कह ही रही थीं। हजार नहीं तो पांच सौ और बढ़वा लूँगी।"

मेरे मन में आया कि ऐसा सोचना एकादशी के साथ अन्याय करना है। किन्तु अब देर हो चुकी थी। दस-दस, पांच-पांच दिन के अन्तर से मैं उस लड़की के हाथ से चाय पी चुका था। उसके हाथ का बनाया हुआ खाना खा चुका था और उन दिनों जिस तकिये के गिलाफ को मैं सिरहाने रखकर सोता था, उसकी कढ़ाई के डोरों में उस लड़की के शब्द बोल रहे थे—"मधुर स्वप्न : सुखी जीवन।"

परिणाम यह हुआ कि जब मुझे स्पष्ट कह देना चाहिये था कि 'ऐसा नहीं होगा', तब भी मैंने अपनी स्थिति का ऐसा कोई स्पष्टीकरण मां के आगे नहीं किया। कांटे चाहे रास्ते के हों, चाहे मानवी दुर्बलता के, चुभना उनका गुण है।

एक दिन दस रुपये का नोट कहीं मुझ से गिर गया बहुत ढूँढा, लेकिन कुछ पता नहीं चला। चाय के लिये चीनी कम हो गई थी वही लाने के लिए सबेरे-सबेरे मैं घर से निकला था। मुझे नोट को मुट्ठी में

साँस लेने का मजा है। कभी चोटी जो [illegible] है। पैसे गिरते समय ध्वनि और [illegible] देते हैं। किन्तु नोट ऐसा नहीं करते, गिरते ही धरती को छूकर [illegible] उन्हें कोई देर नहीं लगती।

नोट मैंने बहुत ढूंढा लेकिन कहीं मिला नहीं। [illegible] घर लौटा, तो माँ मुझे देखकर हँस पड़ीं। बोलीं—"[illegible] गलती पकड़ ली। जब तुम घर से चले थे, तब [illegible] फिर तुरन्त वह भी तुम्हारे पीछे-पीछे चल दी। [illegible] बड़ी ही थी कि खंडहर के किनारे [illegible] गया।"

आश्चर्य और प्रसन्नता के साथ मैंने उत्तर दिया—"[illegible] चलो अच्छा हुआ।"

एकाएक माँ गम्भीर हो गईं। बोलीं—"अच्छा नहीं, [illegible] हुआ। मुन्नी की माँ कह रही थी—बुरी बात है। [illegible] है! सयानी लड़की के आगे नोट फेंककर [illegible] काम नहीं। तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ता पर [illegible] तो लाज का प्रश्न है।"

इसके बाद माँ बोलीं—"मैं [illegible] चाहती हूं।"

मैंने धीरे से केवल इतना कह दिया—"मैं कुछ नहीं जानता।"

करवट बदलते हुए भवानी बाबू साहस करके सोचने लगे—'आज मुझे लगता है कि सब कुछ मिथ्या होने पर भी माया ने मुझे ठग लिया था !'

सत्यवती छः महीने की हो गई थी और राधेगोविन्द पैरों के बल चलने लगा था। एक बार मैंने एकादशी को फिर लाने की चेष्टा की, किन्तु मुझे सफलता नहीं मिली, बल्कि सास से झगड़ा हो गया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"मेरी लड़की तुम्हारे घर नहीं जायेगी—तब तक नहीं जायेगी, जब तक तुम माँ से अलग नहीं होगे।"

उनके इस कथन के उत्तर पर मैंने भी कह दिया "मैं तुम्हारी लड़की को छोड़ सकता हूं। किन्तु माँ को किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकता।"

मैं जानता था, यह बात एकादशी को बुरी लगेगी। और ऐसा स्वाभाविक भी था।

इसके बाद वह दिन भी सामने आ गया, जब माया के साथ भवानी बाबू का विवाह हो गया।

—:o:—

जाह्नवी का जीवन एक तपस्या का जीवन था। [illegible]
कि जाह्नवी के मन में कोई कामना ही न रह गई हो। [illegible],
पर उनका सम्बन्ध अब केवल भरण-पोषण और [illegible] के [illegible]
रह गया था। उसका उद्देश्य था कि मेरे बच्चे पढ़-लिखकर [illegible],
मेधावी और आदर्श पुरुष बनें। शिक्षा और [illegible] का [illegible]
उनके सामने था और उनके चरण-चिह्नों पर चलने में [illegible]
और सुख का अनुभव होता था। [illegible]
[illegible] दिन होता [illegible]
[illegible] और देश का [illegible]
[illegible]
है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
गया है।

मात्र था। न स्वाद के साथ उसका कोई सम्बन्ध था, न तृप्ति के साथ। यही बात वेष-भूषा के सम्बन्ध में भी थी। सुन्दर, रंगीन और तड़क-भड़क वाले वस्त्रों के प्रति उसके मन में कोई ललक नहीं रह गई थी। खादी के अतिरिक्त वह और कोई वस्त्र धारण न करती। कार्य-भार से वह इतनी दबी रहती कि इधर-उधर सोचने का उसे अवसर ही न मिलता। दिन को वह अपना सारा समय विद्यालय में देती। हेम और क्षेम दोनों बच्चे कान्वेंट में पढ़ते थे। उनके विद्यालय का भी वही समय था, जो उसके अध्यापन का। विद्यालय से लौटते समय वह उन्हें अपने साथ लेकर घर चली आती। बच्चों से मिलकर वह अपने जीवन का सारा दुःख भूल जाती थी।

जाह्नवी के सोने के कमरे में एक फोटोग्राफ टँगा रहता था। वह उसके स्वामी नंदनंदन बाबू का था, विवाह के समय का माथे पर रोरी अक्षत हैं और गले में गजरा पड़ा है। मन में प्रसन्नता और मुद्रा में पुलक हास की झलक है।

उसे याद हो आया, जब उन्होंने उसके गले में बाहें डाल कर—कान के पास मुँह ले जाकर—कहा था "जाह्नवी उस प्रवहमान धारा का नाम है, जिसका एक-एक बूँद अमृत होता है।"

कमरे में प्रवेश करते समय वह कभी-कभी अत्यधिक भावमग्न हो उठती। उस फोटोग्राफ की ओर देखते-देखते उसकी आंखें भर आतीं। बच्चे साथ खड़े रहते। जाह्नवी जब आंसू पोंछने लगती कभी-कभी हेम कोई प्रश्न कर देता।

एक दिन की बात है, हेम ने पूछा—"अम्मा, इस तस्वीर को देख कर तुम रोती क्यों हो?"

हेम के प्रश्न से जाह्नवी की भावना और भी तीव्र हो उठी। करुणाविगलित आंखों से आंसू पर आंसू झरने लगे। सिसकियां उभर

उठीं। आर्द्र कण्ठ से वह बोली—"यह तुम्हारे बाबू जी थे बेटा, जो तुम्हें छोड़कर चले गए हैं!"

जीवन की प्रत्येक स्थिति अतीत का एक उत्तर है और वर्तमान के लिए एक प्रश्न—एक समस्या। बच्चे समस्या को भले ही न समझते हों, लेकिन वे प्रश्न करना जानते हैं। पलग पर जाते-जाते हेम ने भी प्रश्न कर दिया—'बाबू कहाँ चले गये हैं अम्मा ?"

जाह्नवी ने आंसू पोंछते हुए उत्तर दिया—"वह स्वर्ग को चले गये हैं बेटा।"

हेम फिर तुरन्त पूछ बैठा—"बाबू वहाँ से कब लौटेंगे, अम्मा ?"

जाह्नवी का उत्तर था—"वे अब कभी नहीं लौटेंगे।" साथ वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

हेम जाह्नवी के गले से लिपट गया और बोला—"तुम रोओगी, तो मैं भी रोऊँगा। मैं बाबूजी के पास जाऊँगा और उनसे कहूँगा—अम्मा बहुत रोती है। अब तुम चलो हमारे साथ। मैं बाबू को बुला लाऊँगा। वह जरूर आ जायेंगे। क्यों अम्मा ?"

अबोध हेम की इन बालसारल्य-समन्वित बोधहीन बातों को सुन कर जाह्नवी क्षणभर के लिये अपना सारा दुःख भूल गई। उसने झट अपने आंसू पोछ डाले। इस प्रसंग मे फिर अधिक कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा। केवल इतना भर कह दिया—"आदमी जब मर जाता है, तब वह लौटकर नहीं आता।"

जाह्नवी चाहती थी कि अब यह प्रसग यहीं समाप्त हो जाय। पर हेम ने फिर तुरन्त प्रश्न कर दिया- "मरना कैसा होता है अम्मा, आदमी कैसे मरता है ?"

जाह्नवी विचार में पड़ गई। हेम की बात का वह क्या उत्तर दे ?

ोर दे भी, तो किस भाँति ? वह ऐसा उत्तर देना चाहती थी जो हेम ी समझ में भी आ जाय और वह फिर कोई प्रश्न भी न करे।

तब उसने समझाते हुये कहा—"संसार की हर एक चीज नाश-ान है। तुम नित्य देखते हो पेड़ों में हरे पत्ते लगे रहते हैं और पौधों ं रंग-बिरंगे फूल खिले रहते हैं। पतझड़ आता है, पत्ते सूखकर धरती र गिर जाते हैं। फूल भी या तो तोड़ लिए जाते हैं, या अच्छी तरह खिल जाने के बाद अपने-आप झड़ जाते हैं।"

उसे स्मरण आ गया कि पड़ोस के मकान में बकरी का बच्चा जाड़ा सहन न कर सकने के कारण ठिठुर कर मर गया था। अतः उसका स्मरण दिलाती हुई जाह्नवी बोली —"तुमने देखा तो था, पड़ौस के जगन्नाथ चाचा के घर में बकरी का एक बच्चा मर गया था। बस, इसी प्रकार आदमी भी एक दिन मर जाता है। मर जाने पर वह हिल नहीं पाता, बोल नहीं सकता, उठ नहीं सकता, फिर वह किसी काम का नहीं रहता। यहाँ तक कि अगर भूमि के अन्दर गाड़ा न जाय, नदी में बहा न दिया जाय, या जला न डाला जाय तो उसका सारा बदन सड़ जाय ! उसके शरीर से दुर्गन्ध फूट-फूट कर अपने आसपास की हवा तक को खराब कर दे।"

जाह्नवी इस चेष्टा में थी कि हेम ने जो प्रसंग उठाया है, उसको वह समझ जाय और फिर बात भी आगे न बढ़े।

हेम से न रहा गया। वह बोला—"ऐसा नहीं हो सकता अम्मा कि मौत किसी को न आये ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता बेटा—किसी तरह नहीं हो सकता। बीज जब धरती पर गिरता है, मिट्टी उसे अपने में मिला लेती है। सर्दी, नमी और गर्मी पाकर बीज धीरे-धीरे

सड़ जाता है, तब उसमें अंकुर फूट उठता है। तो बीज का सड़ जाना, उसका नष्ट हो जाना ही, मरण है। लेकिन उसका अंकुआ फूटना सृष्टि है जन्म है। जब तक बीज सड़ेगा नहीं, तब तक अंकुर भी नहीं फूटेगा। जीव भी जब मर जाता है, तभी उसका जन्म होता है। जन्म भी एक परिवर्तन का नाम है। मनुष्य की आत्मा कभी मरती नहीं, वह सदा अपने रूप बदलती रहती है। तुम्हारे बाबू भी मरने के बाद कहीं न कहीं पैदा हो चुके होंगे। हो सकता है कि वे क्षेम से कुछ छोटे हों।"

जाह्नवी की बात सुनकर हेम उछल पड़ा। वह बोला—"तो क्या बाबू मरे नहीं है, अम्मा? वे कहीं पैदा हो चुके हैं?"

जाह्नवी मुस्कराने लगी। बोली—"हाँ, बेटा! वे अवश्य कहीं पैदा हो गये होंगे।"

हेम पुलकित होकर तत्काल बोल उठा—"तो हम उनको ढूँढ लायेंगे, अम्मा! जहाँ वे होंगे, हम वहीं पहुँच जायेंगे। हम झट से उन्हें पहचान लेंगे। हम उनसे कहेंगे—'अम्मा ने तुमको बुलाया है। तब वह जरूर आ जायेंगे। आ जायेंगे न अम्मा?"

जाह्नवी हँस पड़ी, बोली—"दुनियाँ बहुत बड़ी है, बेटा तुम उन्हें खोज न पाओगे। तुम उन्हें पहचान भी न सकोगे। वे भी तुमको न पहचान सकेंगे। और मान लो, तुमने उन्हें खोज भी लिया, तो उन्हें तुम्हारी बात का विश्वास कैसे होगा? आदमी को रूप प्यारा होता है, रूपान्तर नहीं। मेरे लिये ही नहीं, तुम्हारे लिये भी वही बाबू प्यारे थे और प्यारे हो सकते हैं, जो बयालीस वर्ष के थे। नया जीवन पाकर वे अब—मैंने अभी बतलाया न, कि क्षेम से भी छोटे होंगे। वे अब जिस घर में पैदा हुए होंगे उसी को प्यार करते होंगे। उनके एक माँ होगी, बाबू होंगे, घर-द्वार, धन-दौलत होगी। वे लोग भला उन्हें आने

भी देंगे ! कोई भला तुम्हारी बात का विश्वास भी करेगा ? हो सकता है वह खुद ही कह दें—तुम झूठ बोलते हो, मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ। अब तुम्हीं सोचो, अगर उन्होंने तुमको ऐसा कोरा जवाब दे दिया, तो तुमको कितना दुःख होगा ?"

इस बार माँ की बात सुनकर हेम की आँखों में आँसू आ गये। जाह्नवी देर तक उसे समझाती और मनाती रही। प्यार की थपकियाँ दे-देकर उसने उसे बतलाया कि यह दुनियाँ बड़ी अजीब है, बेटा। जितने भी प्यार के नाते और रिश्ते हैं, सब जीवन के साथ लगे हैं, रूप के साथ लगे हैं, रूप के मोह और स्वार्थ के साथ लगे हैं।

जाह्नवी विद्यालय में लड़कियों को पढ़ाते समय प्राय: सोचा करती —"क्या मैं शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेषता प्रदर्शित नहीं कर सकती ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मेरे यहाँ शिक्षा पाने वाली सब लड़कियाँ सदा उत्तीर्ण होती रहें ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मुझसे शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियाँ आगे चल कर आदर्श गृहणी बन जाएँ। उनके माता-पिता, भाई-बहन, देवर-स्वामी, जेठ-ससुर सबको एक बार यह सोचना पड़ जाय कि आखिर मेरी पत्नी, भाभी, बहू या लड़की का ऐसा कर्तव्य-निष्ठ, सरल, पावन और आदर्श चरित्र किसने निर्माण किया ?"

सोचते-सोचते एक दिन उसने निश्चय किया मैं अपना यह स्वप्न पूरा करके मानूंगी। जो महापुरुष उसके व्याख्यान का विषय होता था, उसके सम्बन्ध में वह घर पर एक बार अच्छी तरह मनन कर लेती। फिर कक्षा में छात्राओं के समक्ष, कथा के रूप में, ऐसे रोचक ढंग से पढ़ाती कि सभी लड़कियाँ अवाक्, स्तब्ध, विस्मित हो होकर उसकी ओर एकटक ध्यानावस्थित-सी देखती रह जातीं।

एक बार उसने बतलाया कि ग्राहम एक प्रकार की घड़ियों का

उसके गुरु टामपियन की समाधियाँ वेस्टमिन्स्टर के गिरजे में अब तक विद्यमान हैं।"

कथा समाप्त हो गई। अन्त ने जाह्नवी ने कहा—"अगर मेरी इन शिक्षाओं का तुम्हारे आचार-धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो मेरी साधना व्यर्थ है, मेरी लगन व्यर्थ है, मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं तुम सबसे एक आशा रखती हूं। क्या मेरा स्वप्न पूरा होगा?"

जाह्नवी के इस कथन के अनन्तर कमरे में एक समवेत स्वर गूंज उठा—

"होगा, होकर रहेगा।"

इस प्रकार जब जाह्नवी उस विद्यालय में धीरे-धीरे अपना आदर्श स्थापित करने में सफल होने लगी, तभी अकस्मात् एक दिन नियति हँसने लगी।

—:o:—

उसकी चमकदार रंगीन मछलियाँ जल-क्रीड़ा करती हुई इतनी प्यारी लगतीं कि आगन्तुक उन्हें एक बार इकटक देखता रह जाता।

इस कमरे में प्रवेश करते हुए बापू का एक तैलचित्र सामने ही दृष्टिगत होता। दायीं ओर पण्डित नेहरू और बायीं ओर श्री सुभाष के फोटोग्राफ थे। बुद्ध भगवान का एक चित्र और था, जो द्वार के ठीक ऊपर बापू के चित्र के सामने था। कमरे में धूप-बत्तियाँ सदा सौरभ बिखेरती रहती थीं।

घनानन्द बाबू का दोहरा व्यक्तित्व था। एक वह, जो समाज के साथ था, जनता के साथ था। दूसरा वह जो घर में था... मल्लिका देवी, बच्चों तथा नौकरों के साथ था। मंच पर वे गांधीवादी रहते और अहिंसा का सदा समर्थन करते। किन्तु व्यक्तिगत जीवन में हिंसा-अहिंसा में कोई विभेद न मानते थे। यह घोषित करते हुए उन्हें किंचित संकोच न होता कि जो आदमी जीवों पर दया नहीं करता, असहाय दीन-दुखियों की खुले हृदय से सहायता नहीं करता, पीड़ित मानवता के प्रति सक्रिय-सहानुभूति नहीं रखता, वह जन-सेवक नहीं हो सकता – और देश-भक्त भी नहीं हो सकता। किन्तु उनके घर में मल्लिका देवी मांसाहार से बड़ी प्रीति रखती थीं और खादी तो कोई छूता भी न था। मल्लिका देवी प्रायः विदेशी वस्त्र धारण करतीं और बच्चे भी उन्हीं का अनुकरण करते। घर के पारस्परिक व्यवहारों में प्रायः अंग्रेजी बोली जाती। पीड़ित मानवता के प्रति सक्रिय सहानुभूति की स्थिति यह थी कि नौकरों को समय पर कभी वेतन न मिलता। जब किसी नौकर को खर्चे की जरूरत पड़ती, तब आठ दिन पहले से पीछे पड़े बिना उसे टका न मिलता, और जो कभी मिलता भी तो बीस रुपये की मांग पर दस रुपये और पचास रुपये की मांग पर पन्द्रह रुपये।

घनानन्द बाबू हिसाब रखने के पक्षपाती न थे। उनका कहना था कि पाई-पाई का हिसाब वह लोग रखते हैं जो मक्खीचूस होते हैं। हमको इस बात से कोई मतलब नहीं कि किसी का हमारे ऊपर क्या निकलता है। हमारे लिए महत्व केवल इस बात का है कि उसकी तात्कालिक आवश्यकता क्या है?

मल्लिका देवी को समाज में मान पाने का बड़ा चाव था। सदा वे यही सोचा करतीं कि सामाजिक संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों और समय-समय पर होने वाले विविध सम्मेलनों का उद्‌घाटन करने के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों को जो मेरा स्मरण नहीं आता अवश्य ही इसमें कोई रहस्य है। समाज में कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं, जो मुझसे ईर्ष्या रखते और मेरी उन्नति से जलते हैं।

कदाचित् यही कारण था कि मल्लिका देवी नगर में सम्मान पाने का कोई-न-कोई नवीन प्रयोग नित्य करती रहती। जब किसी संस्था का जन्म होने लगता, तब उन स्त्रियों द्वारा वे अपना मन्तव्य सिद्ध होने की पूरी चेष्टा करतीं; जो उनके घर आती-जाती और उनके परामर्शों पर चलती रहती थी।

इन स्त्रियों को अपने वृन्द में सम्मिलित करने की एक विशेष नीति रहती। या तो वह किसी धनाढ्य की गृहणी होती या किसी असाधारण व्यक्तित्व वाले नेता, अधिकारी अथवा विद्वान् की धर्म-पत्नी। उनके मन में ऐश्वर्य, पद, प्रभाव और अनुशासन-सम्बन्धी मेधावी तथा व्युत्पन्न व्यक्तियों को मिलाये रखने की भावना सदा काम करती रहती। वे सोचती थीं कि ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित रखने में उस प्रतिभा के अध्ययन का अवसर निरन्तर मिलता रहेगा, जो जन-समुदाय को प्रभावित, अनुकूल तथा प्रशंसक बनाए रखती है। इसलिए असाधारण प्रतिभा की अनुसंधान-जिज्ञासा में उनका मन निरन्तर सजग और तरंगित बना रहता था।

ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा थी, बुध का दिन था और दिनांक था बारह जून। गगन से श्याम घटाएँ हट गई थीं। पवनदोलन शान्त था। वातावरण में ऊष्मा इतनी अधिक थी कि पंखे के बिना एक क्षण को भी आराम न मिलता था। चाँदनी अब छिटक चली थी। बंगले के लॉन की हरी-हरी दूर्वा पर पाँच आराम कुर्सियों के बीच, एक गोल टेबिल थी, जिसमें गुलाब का एक बड़ा पुष्प-गुच्छा रक्खा हुआ था। तीन फीट लम्बे स्टैण्ड पर बिजली का पंखा चल रहा था; उधर भीतर से रेडियो-संगीत की मनोहर वाद्य-ध्वनियाँ आ रही थीं।

इतने में मल्लिका देवी ने द्वार-मण्डप के बाहर आकर सहसा रुकते-रुकते पूछा 'मेरा ख्याल है, एक टेबिल लैम्प के बिना काम न चलेगा। क्यों शोभा?"

शोभा नगरपालिका के एक भूतपूर्व सभापति की छोटी बहन थी। सुन्दर कविता लिखने और फिर उसका परम मनोहर पाठ करने में उसने यथेष्ट कीर्ति-अर्जन की थी। उसने उत्तर दिया—"मुझे तो ऐसी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। पूर्ण चन्द्रिका की शुभ्र शीतल रश्मियों में बिजली की रोशनी मेरी आँखों को कभी सहन नहीं होती।"

इसी क्षण शाल्मली देवी शोभा की ओर उन्मुख होकर धीरे से बोल उठीं—"सहन तो मुझे भी नहीं होती, शोभा रानी।" शाल्मली देवी उस विद्यालय की मुख्याध्यापिका थीं, जिसकी मंत्राणी मल्लिका देवी थीं।

एक के स्थान पर, दो के विरोध करने पर, मल्लिका देवी भी आगे बढ़कर शाल्मली के निकट वाली कुर्सी पर आसीन हो गईं।

इतने में अनारकली ने कह दिया—"आज की पार्टी सदा स्मरण रहेगी।"

अनारकली नगर के एक संभ्रान्त पूंजीपति की धर्मपत्नी थीं। अंग्रेजी में उन्होंने एम० ए० किया था और दिल्ली में होने वाले नृत्य-कला के एक अखिल-भारतीय सांस्कृतिक महोत्सव की प्रतियोगिता में प्रथम पारितोषिक-स्वरूप एक स्वर्ण-पदक और नाना उपहारों में सब मिलाकर कोई पाँच सहस्र रुपये प्राप्त किये थे। विवाह के पश्चात् नृत्य-कला का सार्वजनिक प्रदर्शन तो अनारकली ने बन्द कर दिया था, पर व्यक्तिगत उत्सवों के लिए यदि कभी पति का अनुरोध होता, तो उसका पालन करने में उन्हें कोई आपत्ति न होती थी।

"स्मरण तो अवश्य रहेगी।" स्वीकारोक्ति के साथ शाल्मली देवी कुछ गम्भीर हो गईं।

मल्लिका देवी को यह बात कुछ रहस्यपूर्ण प्रतीत हुई। उन्होंने कह दिया—"स्मरण रहेगी भी और नहीं भी रहेगी। आज जो बात हमारे लिए स्मरणीय होती है, दस दिन बाद—नहीं तो दस माह बाद—वह विस्मरणीय बन जाती है। मनुष्य के मन का कोई घाव ऐसा नहीं कालक्षेप जिसे भर न सकता हो।"

मल्लिका देवी का इतना कहना था कि शाल्मली ने कह दिया—"जहाँ तक विद्यालय के शिक्षण का सम्बन्ध है मुझे जाह्नवी के कार्य से कभी कोई शिकायत नहीं हुई। किन्तु जब उन्होंने सांस्कृतिक समारोहों में सक्रिय भाग लेने से इन्कार कर दिया, तब उनकी ओर से हमारा मन गिर गया। यह सही है कि वैधव्य की कठोरता ने उन्हें सांसारिक विषयों से विरक्त बना दिया है। यह भी सही है कि छोटे-छोटे बच्चों के कारण वे अतिरिक्त समय दे सकने की परिस्थिति में नहीं हैं। पर विद्यालय के हित की दृष्टि से हमारे लिये यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि जो व्यक्ति एक तो ऐसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम

राग न ले, दूसरे प्रकारान्तर से विघ्न डाले, उसके साथ हमारा सम्बन्ध कितने दिन चल सकता है !"

शोभारानी को शाल्मली देवी की यह बात स्वीकार न थी। रह-रहकर उन्हें जाह्नवी की वह मुद्रा स्मरण आ रही थी, जिसमें आँसुओं की करुणा और कण्ठ की आर्द्रता छुपी हुई थी। उन्हें उसके कुछ शब्द भी बारम्बार स्मरण आ रहे थे। अतएव उसने कह दिया—"मैं इससे सहमत नहीं हूँ। प्रतिमा के क्षेत्र में मैं उनका सबसे अधिक आदर करती थी। मुझे उनके वे शब्द कभी नहीं भूलेंगे—और टार्च जलाकर उन्हें अपनी नोट-बुक निकालकर तुरन्त पढ़ दिया—'मुझे इस विद्यालय की ये दीवारें स्मरण आयेंगी, जिनमें बैठकर मैं छात्राओं के चरित्र-निर्माण का स्वप्न देखती थी। मुझे यह सभा-कक्ष स्मरण आयेगा, जिसमें बैठकर हम प्रफुल्ल मन से सरल चपल कन्याओं की बाल-सुलभ चंचलता देख-देखकर गद्‌गद्‌ हुआ करती थीं। यह सही है कि विद्यालय की छात्राओं से मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध छूट रहा है, किन्तु यह भी सही है कि उनके साथ मेरा व्यक्तिगत, आत्मीय और आध्यात्मिक सम्बन्ध सदा बना रहेगा। और अन्त में यही बात मैं अपनी सहयोगिनी सखियों के सम्बन्ध में भी कहना चाहती हूँ।

शोभारानी का यह कथन सुनकर अनारकली विमुग्ध हो उठी। वह बोली · "मुझे भी अब कुछ ऐसा जान पड़ता है कि जाह्नवी देवी का सहयोग त्याग कर हमने बड़ी भूल की है।"

मल्लिका देवी का यह स्वभाव बन गया था कि जो कार्य हाथ में ले लेतीं, फिर उसके विषय में कोई प्रतिक्रिया उनसे सहन न होती थी। उन्हें सबसे अधिक आपत्ति इस बात पर थी कि जाह्नवी देवी अपनी विवशता प्रकट करने के लिए न तो मेरे बँगले पर आईं, न वे विद्यालय की मुख्याध्यापिका शाल्मली देवी से ही मिलीं। अतः अनारकली की

इस बात पर वे बोल उठीं —"मैं इस विषय में अब और कोई विचार सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैंने जीवन में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। मेरी दृष्टि सदा आगे ही पड़ती रही है। जैसा कुछ हमने सोचा, कर दिया। अब उस पर किसी प्रकार का पश्चाताप करना न मैं अपने लिए उचित समझती हूँ, न आपके लिए। मैं तो सदा यही सोचती हूँ जीवन एक कारवाँ है, जो सदा चलता रहता है।"

शाल्मली देवी चुपचाप बैठी हुई सब सुन रही थीं। वे कुछ कहना चाहती थीं, पर यह तै नहीं कर पा रही थीं कि कहें या न कहें।

इतने में मल्लिका देवी की बड़ी लड़की शेफाली एक सुन्दर कुतिया को साथ लिए आ पहुँची। उसके केश कुछ भूरे थे। लम्बे इतने कि कानों के नीचे तक लटकते हुए—और कोमल इतने कि रेशम के लच्छे से प्रतीत होते थे। आते ही वह मल्लिका की साड़ी में मुँह डाल उसके पैर सूँघने लगी।

मल्लिका ने उसके सिर पर हाथ रखकर थपथपाते हुए कह दिया—"क्या कहना है तुझे ?" और शेफाली बोल उठी—"मम्मी, मैंने तुमको एक बात नहीं बतलाई।"

मल्लिका ने पूछा—"कौनसी बात ?"

शेफाली ने उत्तर दिया—"जाह्नवी मौसी आज हमारे यहाँ पार्टी में जब आई थीं, तब वे मुझे एक डब्बा दे गई थीं। उस डब्बे में बढ़िया पुस्तकें, रेशमी खादी के रूमाल और तरह-तरह की मिठाइयाँ रक्खी थीं।"

आश्चर्य के साथ मल्लिका ने पूछा—"तो तूने उसी समय मुझे बतलाया क्यों नहीं ?"

"हूँ", शेफाली ने मुँह लटकाते हुए कहा—"उन्होंने ही कहा था,

ो मेरे लौट जाने के बाद ही खोलना ।"

मल्लिका अपना कुतूहल न रोक सकी। बोली —"मैं अभी आयी।"
र कथन के साथ ही वह अन्दर जाने लगी।

इसी क्षण शोभा ने कह दिया—

"मगर प्यार के ऐसे उपहार को देखने की उत्सुकता केवल अ प
तक ही सीमित नहीं, मैं भी इसे अपना अधिकार समझती हूँ।"

इतने में अनारकली भी खड़ी हो गई।

शाल्मली को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। अतः जब मल्लिका के साथ शोभा तथा अनारकली दोनों-की-दोनों चल खड़ी हुईं, तो उन्होंने भी अँगड़ाई लेते हुए कह दिया "मैं तो अब आज्ञा चाहती हूं। आज दोपहर से ही सिर में मीठा-मीठा दर्द है। व्यस्त रहने के कारण अब तक उस पर ध्यान नहीं गया था। इसलिए मैं तो अब जाऊँगी। जाह्नवी देवी के स्थान पर जो नियुक्ति करनी है, उसका विज्ञापन मेरे ख्याल से अब दे देना चाहिए।"

"अवश्य।" कथन के साथ मल्लिका ने उत्तर दिया "मगर थोड़ी देर अगर हम लोग और साथ बैठ लेते, तो ज्यादा अच्छा होता। ऐस्पिरीन की टेबिलेट मँगवाऊँ?"

'नहीं, मेरा यह पुराना रोग है। आप इसकी फ़िकर न करें—अ मुझे अब जाने ही दें।" शाल्मली देवी ने शोभा और अनारकली ओर उन्मुख होकर यह अनुरोध किया कि वापस लौटते हुए आप अगर मेरे यहां भी दो मिनट को होती जायें, तो मुझ पर यह दोनों की विशेष कृपा होगी।

"अच्छा, नमस्ते" कहकर सबको एक साथ सम्मिलित अ के साथ हाथ जोड़कर शाल्मली देवी चल दीं।

फाली डब्बा लाने चली गई थी। मल्लिका देवी कुछ
र हल्की-सी चपत जमा-जमाकर उसको प्यार करने में लीन

बैठक के भीतर सोफे पर बैठती हुई अनारकली ने धीरे से कहा—
गता है, आज दीदी को जाह्नवी देवी का वास्तविक मूल्य मालूम
हा है। इतनी बातें हो गई पर वे कुछ नहीं बोलीं।"

अनारकली की बात ज्यों ही मल्लिका देवी के कानों में पड़ी, त्यों
ही उन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर कहा—"मैं जानती हूं, दीदी मन
से स्वस्थ नहीं रहतीं। पर मैं यह भी जानती हूं, वे बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठ
हैं। मैंने स्वयं जाह्नवी देवी से कहा था—"अभिनय एक कला है और
कला के नाम पर हमको थोड़ा उदार बनने की आवश्यकता है। मैंने
उनसे विद्यालय की ओर से होने वाले नाटक में मीरा का अभिनय करने
की विनय की थी। आप समझती हैं, कितना पवित्र रोल था। सच पूछें
तो उनके लिए यह एक गौरव की बात थी। अगर वे मीरा का पार्ट
स्वीकार कर लेतीं तो एक बार नगर भर के सभ्य-समाज में चमक
उठतीं।"

अनारकली के मुंह से निकल गया—"इसमें संदेह नहीं।"

शोभा ने कुछ नहीं कहा। मल्लिका देवी कुछ उत्तेजित होते हुए
बोली—"पर उन्होंने मेरे इस अनुरोध की उपेक्षा की। उन्होंने मुझे
कोरा उत्तर देते हुए कह दिया—'मैं असमर्थ हूं।' मैं उनकी असमर्थता
का मूल्य समझती हूं। जब दर दर ठोकरें खानी फिरेंगी, तब उ
जीवन की यथार्थता का पता चलेगा।"

अनारकली को अपने वे दिन स्मरण हो आये, जब विश्वविद्या
छोड़ देने के बाद एक दिन अचानक पिता का स्वर्गवास हो गया

अपने निजी खर्च के लिए कभी-कभी माँ के सामने दो-दो रुपए तक गिड़गिड़ाना पड़ता था। वह कम्पित हो उठी। बोली—"सचमुच [illegible]ार हो जाने पर आदमी दो कौड़ी का हो जाता है। सारी प्रतिभा [illegible]न्हीं घड़ियों की चेरी है, जो मानसिक संतुलन को स्थिर बनाये रखती है।"

इतने में एक सुन्दर दफ्ती का डब्बा लिए शेफाली आ पहुँची। जैसा उसने बतलाया था—खिलौने, पुस्तकें, रूमाल और टूँगने तथा चूसने की मिठाइयाँ—सारी वस्तुएँ प्रथम श्रेणी की थीं। पर उत्तेजना के कारण मल्लिका ने एक सरसरी दृष्टि से देखकर डब्बे को उठाकर भूमि पर फेंकते हुए कह दिया—"सिली! इन्हीं थर्ड रेट चीजों को पाकर इतना फूल रही थी?"

शोभा सम्पन्न घर में अवश्य पली थी, किन्तु हृदय उसने एक कवयित्री का पाया था। अतः वह तुरन्त आवेश में आकर खड़ी हो गई। नयन रक्ताभ हो उठे, भृकुटियाँ तन गयीं। अधर फड़कने लगे। क्षणभर का भी विलम्ब किये बिना वह बोली—"अब तक मैं चुपचाप धैर्यपूर्वक सब सुनती और देखती रही। पर अब मुझे स्पष्ट रूप से कहना पड़ रहा है कि यदि कोई व्यक्ति बुरे बच्चों को भला और सच्चरित्र बना सकता है, ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले पशु-मानवों के सा[थ] भी अपना निर्वाह कर सकता है अपने सैकड़ों साथियों के बी[च] युक्तिसंगत, प्रभावशाली और खरी बात कह सकता है, निर्माण के [illegible] में किसी भी काम को सुन्दरतापूर्वक करके दिखा सकता है, तो [illegible] हीन, कंगाल, उपेक्षित और निरवलम्ब होने पर भी, जंगल में [illegible] बनाकर रहे, तो भी संसार उसके द्वार तक जाने को एक मार्[ग] लेगा। आपने समझा क्या है? मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आ[प] भ्रम में हैं। ऐश्वर्य और वैभव का विष आपकी रग-रग में [illegible]

है। भले और बुरे की पहचान, आपमें कतई नहीं है। अपनी बच्ची के लिए ऐसी सुन्दर भेंट पाकर कोई भी धन्य हो जाता। पर कृतज्ञता स्वीकार करने के बदले आप जो प्रतिक्रिया प्रकट कर रही हैं, वह आप जैसी उच्च स्तर की महिला के लिए सर्वथा अशोभन है। मैं एक बार नहीं, पचास बार आपकी इस मनोवृत्ति पर घृणा प्रकट करती हूं। मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहती हूं कि जाह्नवी दीदी जैसी धर्मनिष्ठ और [illegible]
अपना त्यागपत्र कल ही भेज दूंगी। बस बहुत हो चुका। नमस्ते।"

मल्लिका देवी ने शोभा का हाथ पकड़कर उससे बैठने का बहुत अनुरोध किया, अन्त में क्षमा भी मांगी, किन्तु शोभा रानी किसी प्रकार न रुक सकी।

अनारकली शोभा को अपने साथ लेकर आयी थी। अतः वह भी साथ हो ली। हां, चलते समय उसने इतना अवश्य कह दिया—"शोभा दीदी इस समय भावुकता में आकर अनाप-शनाप बक गई है। आप को इसका कुछ ख्याल न करना चाहिए। मैं उन्हें मनाने की पूरी चेष्टा करूंगी।"

कार स्टार्ट होते ही द्वार-मण्डप की सीढ़ी पर खड़ी हुई मल्लिका बोली—"कल प्रातःकाल की चाय तुम्हारे यहां ले रही।"

अनारकली ने उत्तर दिया—"जरूर, जरूर।"

तब तक गाड़ी फाटक तक पहुँच चुकी थी।

—: ० :—

र :

शुभ्र धुली खादी का नया कुर्ता पैजामा धारण किये हुए हेम, भाल
चूना मिली हुई हल्दी में ऊपर से अक्षत लगाये जब जाह्नवी के
। से कटोरे का दूध पीने लगा, तब नीले मखमल की अलंकृत झालर-
र टोपी लिये क्षेम ने भी अपने दोनों हाथ उठाकर कहना प्रारम्भ
र दिया—"औल अम तो, औल अम तो ?"

मकान और पास-पड़ोस की सभी लड़कियाँ, बहुएँ और बच्चे एक
साथ हँस पड़ीं। जाह्नवी ने उसे गोद में भरते हुए कहा—"तुमको भी
पिलाते हैं बेटा, धीरज धरो।"

जाह्नवी जानती थी कि क्षेम जरूर जिद करेगा। अतएव उसने
दूसरा कटोरा, जो खिड़की के ऊपर ढका रखा था, उठाकर क्षेम के
मुँह में लगा दिया। लड़कियों ने गुलाब के फूल हेम और क्षेम दोनों
पर बिखेर दिये।

उपस्थित महिलाओं ने हेम और क्षेम दोनों को आशीर्वाद देते हुये
कहा—"राम-लक्ष्मण की-सी जोड़ी भगवान करे युग-युग जिये।"

थोड़ी देर में गीत मांगल्य प्रारम्भ हो गया। लगभग दो घंटे तक
पहले सोहर, और भजन होते रहे। फिर जाह्नवी ने केवल शकुन भर
पूरा करने के नाते उपस्थित वृन्द में बतासे और गुलगुले बाँट दिए
फिर धीरे-धीरे सभी स्त्रियाँ, बहुएँ और बच्चे अपने-अपने घर लौट गये

आज दिन भर में लगभग दस बार जाह्नवी आत्मलीन हो-हो
चिन्तित हुई होगी। उसे बार-बार उसी घटना का स्मरण आता रह

'क्या सोचा था, क्या हो गया।' आँसू आँखों से नहीं निकले, क्योंकि आज का दिन इसके लिए वर्जित था।

जो वर्जनाएँ और निषेधात्मक आग्रह सामाजिक संस्कारों पर प्रतिबन्ध के रूप में लागू होते हैं, उनका पालन हमको विवश हो करना भले ही पड़े, किन्तु ऐसे अवसरों पर एक विडम्बना तो हमारे मानस-लोक पर समाच्छन्न बनी ही रहती है। अनेक आत्मीय स्वजन स्मरण आते हैं। उनके साथ-साथ वे क्षण, वातावरण के प्रकरण और पुलक-संचारी संस्मरण स्मरण आते हैं, जिनके साथ जीवन का सघन और दुर्लभ स्नेह-सम्बन्ध होता है।

निकटवर्ती उपनगरों में रहने वाली कुछ छात्राएँ, दो-दो, तीन-तीन एक साथ, सायं-प्रातः घड़ी-दो-घड़ी को, उसके यहाँ आ जाती थीं। दो-एक दिन पूर्व उन्होंने कहीं किसी वार्ता-प्रसंग में इतना जान लिया था कि जाह्नवी गुरु माँ जी के चिरजीव हेम की वर्षगाँठ अमुक दिन पड़ेगी। बस यह संवाद उन्होंने अनेक सखियों में प्रसारित कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि उनके उत्साही माता-पिता उपहार-सामग्री ले-लेकर आ पहुँचे। जाह्नवी का भाव-प्रवण हृदय पुलकित हो उठता था। कभी ध्यान आता – काश वे जीवित होते,' फिर झट से एक विचार-रश्मि की भाँति अन्तर के कोण कोण में पैठ जाता—'वे जीवित होते तो मैं विद्यालय में नौकरी ही क्यों करती'—'ओः! तो कुछ सौभाग्य ऐसे भी होते हैं, जिनका उद्भव दुर्भाग्य के भीतर से होता है! — प्रभु, तुम्हारी यह कैसी अद्भुत लीला है!'

उषा अपने पिता के साथ आई थी। डलिया में हेम और क्षेम के लिए रेशमी खादी के सिले कपड़े, हेम के लिए पुस्तकें, क्षेम के लिये खिलौने, भाँति-भाँति की मिठाइयाँ और फल थे। कृतज्ञता स्वीकार में जाह्नवी ने कहा था—"धन्यवाद, ऐसे प्रेमोपहार के सम्मुख कुछ नहीं

है ।" शकुन्तला अपनी माँ महालक्ष्मी के साथ आई थी । वे अवस्था में जाह्नवी से कुछ ज्येष्ठ थीं । शकुन्तला ने परिचय में कहा—"गुरु माँ जी, मेरी माँ भी एक सुप्रसिद्ध वकील की बेटी हैं और नाम इनका महालक्ष्मी है ।" महालक्ष्मी अपने साथ फलों और मिठाइयों के अतिरिक्त हेम के लिये एक रोल्डगोल्ड सेकंडस कलाई घड़ी ले आई थीं । जाह्नवी ने कृतज्ञता-ज्ञापन में कहा था—"दीदी, मैं आपका बड़ा उपकार मानती हूँ । आप जानती हैं, एक उपकार ही तो है, जो पीड़ित मानवता को प्राणमय बनाते रहते हैं । अन्यथा आज की दुनियाँ में कौन किसकी चिन्ता करता है ।"

महालक्ष्मी ने उत्तर में कहा था—"आपका जैसा सुयश सुनती थी, वैसा ही मैंने आपको पाया । पर आज मैंने एक ऐसी बात सुनी है, जो बड़ी चिन्ताजनक है । क्या ऐसी कोई बात हो गई है, जिससे आपको हमारे विद्यालय से अलग होना पड़ रहा है ?"

जाह्नवी के मन में अनेक बार इस घटना की टीस उठती रही थी । पर अपनी यह मर्मव्यथा उसने किसी से प्रकट नहीं की । मनुष्य के लिए नियति की यह कैसी विडम्बना, कैसा अपरूप कुटिल परिहास है । आनन्द-विनोद और मांगलिक वेला में ही मेरा पृथक्करण !

वह एकदम से अवाक् हो उठी । नयन सजल हो उठे । धोती से ही आँसू पोंछती हुई वह बोली—'तो क्या हुआ ? हेम के बाबू नहीं रहे, फिर भी भगवान् ने मुझे त्राण दिया है । नौकरी चली गयी, फिर भी आपके आशीर्वाद से ये बच्चे" - उसने हेम और क्षेम के सिर पर हाथ रखकर उन्हें अपनी ओर समेटते हुए कह दिया—'पनपेंगे, बढ़ेंगे और एक दिन पूर्ण समर्थ बनकर रहेंगे ।—यदि हम अग्नि-परीक्षाओं को चीरते, उन्हें पार करते हुए, आगे बढ़ते हैं, तो इसका

यही अभिप्राय तो है कि परमपिता परमात्मा हमें ही इसके लिए योग्य मानता है।"

महालक्ष्मी की मर्मवाणी फूट निकली। बोलीं—"वाह! धन्य हो तुम जाह्नवी बहिन। तुम्हारी रसना में भगवती वीणापाणि की प्रेरणा और आत्मा के एकान्त कुटीर में मातेश्वरी दुर्गा की शक्ति है। पर इतना मैं कहे देती हूं कि यह विद्यालय चलेगा नहीं। ऐसी संस्थाओं का नाश निश्चित है, जहां अधिकारीगण इतने मदान्ध हैं। हम सब मिलकर इसका विरोध करेंगी। आप चिन्ता न करें और हमारे योग्य जो भी सेवा हो, निस्संकोच प्रकट करें।"

दिन भर ऐसे श्रद्धा प्रसगो का तांता बंधा रहा। सायंकाल हो रहा था। सहसा महरी ने आकर कहा—"परमेश्वरी बाबू आये हैं।"

"कौन परमेश्वरी बाबू?" जाह्नवी ने पूछा।

"अरे वही जो देवनगर में रहते हैं।" किसी कालेज में पढ़ाते हैं—जिनके दो बच्चे हेम के साथ ही तो—उन्ही के स्कूल में—पढ़ते हैं।"

"लेकिन मैं—मुझसे—मुझको तो कुछ मालूम नहीं। क्या वे मुझे जानते हैं? उनसे पूछो, किससे मिलना चाहते हैं?" जाह्नवी ने कुछ विस्मय, कुतूहल और अन्यमनस्कता से कह दिया।

"अरे!" महरी कुछ अटकती हुई बोली—"आप उनको नहीं जानती! पर वे तो आपको जानते हैं।"

जाह्नवी ने कहा—"उनसे पूछो, क्या काम है?"

परमेश्वरीलाल जीने में खड़े हुए सब कुछ सुन रहे थे। कपाटों की ओट से, थोड़ा खांसते हुए वे बोल उठे—"जी, मैं आपका अधिक

समय लेने नहीं आया। मैं तो चिरंजीव हेम की वर्षगांठ के इस शुभ अवसर पर अपनी कुछ तुच्छ भेंट लेकर आया हूं।"

उत्तर सुनकर जाह्नवी का विस्मय और भी बढ़ गया—'जिस व्यक्ति को मैंने कभी देखा नहीं, जिससे मैंने कभी बात नहीं की, जिसके साथ मेरे वंश का भी कोई नाता नहीं, वह व्यक्ति मेरे हेम के लिए उपहार लेकर आये, इसका कुछ अर्थ - निहित मन्तव्य, प्रच्छन्न अभिप्राय—तो होना चाहिए। पर इस अवस्था में इसे लौटाया भी कैसे जाय? -और उत्तर भी क्या दिया जाय?'

फलतः आगे बढ़कर द्वार के निकट आ गई जाह्नवी। यों अँधेरा अभी अधिक नहीं हुआ था। फिर भी जाह्नवी ने जीने की बत्ती जला दी। किवाड़ थोड़े ही खुले हुए थे। उन्हें पूरा खोल दिया। सहसा कुछ ध्यान आ गया। किन्तु बस इतना ही कि इनको कहीं देखा तो है। पर स्मरण नहीं आ रहा, कहां?

आगे बढ़ते हुए तुरन्त बोल उठे—"आपको कदाचित् स्मरण हो कि हम लोग इलाहाबाद से एक साथ, एक ही डब्बे में आये थे। आपके पास असबाब कुछ ...।"

"ओः! मुझे स्मरण हो आया। क्षमा कीजियेगा—दिन भी तो बहुत हो गये।"

मजदूर के सिर पर रक्खी हुई डलिया उतारते हुए परमेश्वरी बाबू ने कह दिया—"इसको जहां कहिए वहां रखवा दूं।"

जाह्नवी बड़े संकोच में पड़ गई। बोली—"आपने तो बड़ा कष्ट किया। इसकी क्या आवश्यकता थी? यों भी आज काफी सामग्री आ गई है। मैं हैरान हूं, मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि इतनी श्रद्धा, इतना आदर, आत्मीयता—और सामाजिक दृष्टिकोण से देखें, तो—

सहयोग और व्यवहार मुझसे निभेगा कैसे ? पर आप अन्दर बैठिये न ?" कथन के साथ वह परमेश्वरीलाल को कमरे के अन्दर ले आई। उसमें दो साधारण कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं और एक छोटी-सी टेबुल तथा एक तिपाई।

परमेश्वरीलाल अब तक खड़े थे।

जाह्नवी पुनः बैठने का आग्रह करती हुई बोली—"बैठिये न ?" और इतना कहने के पश्चात् बिजली की बत्ती का बटन दबा दिया। परमेश्वरीलाल ने मजदूर को पैसे दिये। पैसे ठीक होने की स्वीकृति में सिर हिलाता हुआ मजदूर चला गया।

भेंट-सामग्री देखती हुई जाह्नवी बोली—"मुझे बड़ा संकोच हो रहा है मैं तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि आपको मेरा इतना ध्यान रहेगा। आपका यह आभार मैं कैसे स्वीकार करूँ ?"

परमेश्वरीलाल अभिभूत हो उठे। बोले "आभार की तो इसमें कोई बात भी नहीं है। और अगर कुछ है, तो वह बच्चों के लिए है और आप जानती हैं—बच्चे सम्पूर्ण राष्ट्र की भावी आशा के प्रतीक—उसकी एक अक्षय निधि होते हैं। बच्चे जियें, जागें, समर्थ बनें, समाज और देश का गौरव बढ़ायें। इसी भावना से, एक पावन शुभ-कामना के साथ, मेरी यह तुच्छ भेंट आपके सामने है।"

जाह्नवी ने अनुभव किया आगन्तुक एक सभ्य सम्भ्रान्त नागरिक है। तब उसने कह दिया—"मैं इसके लिए आपकी बहुत-बहुत कृतज्ञ हूं।"

क्षेम डलिया में रखे हुए सामान को देखकर पुलकित हो रहा था। एक खिलौना उसने उठा कर जो दबाया तो वह बोला—"चूँ।" रेशमी खादी का कपड़ा उठाते हुए हेम बोला—"अम्मा, इसकी बुशशर्ट

अच्छी रहेगी।" क्षेम ने विस्किट रंग का मिल-मेड चिकना रेशमी कपड़ा उठाते हुए कह दिया—"ये अमाला ऐ। अम्मा, देखो-देखो अम्मा, तैछा छुंदल ऐ।"

परमेश्वरीलाल ने दोनों बच्चों के सिर पर हाथ फेरा; पीठ थपथपाई; और कहा—"भगवान् करे युग-युग जियें और सदा सुखी रहें।"

हेम इसी समय बोल उठा—"अम्मा, हमने इनको पहचान लिया। ये मामा जी हैं। रेल के डिब्बे में इनसे भेंट हुई थी।" और उसने परमेश्वरीलाल की ओर उन्मुख होकर पूछा—"हुई थी न ?"

परमेश्वरीलाल ने अनुभव किया—'हेम की स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र है।' बोले—"तुमको अब तक याद बना है।" और प्रसन्नता से पुलकित हो उठे।

जाह्नवी ने कहा—"आपकी सज्जनता का थोड़ा-सा परिचय तो उसी अवसर पर मिल गया था। एक सज्जनता ही तो है, जो मनुष्य को देवोपम बना देती है।"

फिर उसे कुछ ध्यान आ गया। महरी अब तक काम में लगी हुई थी। "बस एक मिनट"—कहकर जाह्नवी कमरे से बाहर आई और महरी के पास जाकर धीरे से बोली—"इस काम को फिर कर लेना। इस समय बाजार से एक हँडा लस्सी तो बनवा ले आओ। और देखो, दो बीड़े पान भी ले लेना, इलायची अलग से। मगर जल्दी। मेहमान बैठे हैं।"

महरी बोली—"अभी ले आती हूँ, दीदी।" और वह साबुन से हाथ साफ करके चल दी।

जाह्नवी धीरे-धीरे कमरे में वापस आ गई। पर एक अगम

उदासीनता उसके मुख पर व्याप्त थी ।

इतने में परमेश्वरीलाल बोले —"मैंने एक बात और सुनी है। अगर वह सत्य है, तो सचमुच बड़े दुःख और परिताप का विषय है ।"

जाह्नवी के भीतर एक भयानक प्रश्न था—'अब ?'

पर सहसा तुरन्त वज्र कठोर बनकर उसने उत्तर दिया —"अब मेरे लिये दुःख और परिताप की कोई बात नहीं हो सकती । संघर्ष को मैं दुःख की बात मानती भी नहीं । हर एक दुःख की घड़ी भावी सुख की पृष्ठ-भूमि होती है। यद्यपि व्यक्तिगत सुख की मुझे कोई लालसा नहीं। एक बात और है—दुःख और आपत्ति के समय मैं सृष्टि के इस नियम को कभी नहीं भूलती कि शान्ति और सौख्य के अलस जीवन में जब कभी बाधा पड़ती है, तभी भगवान् किसी महान् उत्तरदायित्व को सौंपने के लिए हमारी परीक्षा लेता है और जब परमपिता ही हमारा परीक्षक हो, तो फिर भय-कातर होने की क्या आवश्यकता है ?"

परमेश्वरी बाबू अब तक जाह्नवी के सम्बन्ध में ऐसे उच्च और सुदृढ़ चरित्र —ऐसे उदात्त विचार और उत्कर्ष —की कल्पना भी न कर सके थे । श्रद्धा-विनत हो वह जाह्नवी की ओर इकटक देखते रह गये।

इतने में महरी लस्सी लेकर आ पहुँची । जाह्नवी ने लस्सी के कुंडे को टेबिल पर रख दिया और उसके बाद कागज में लिपटे हुए पान भी ।

परमेश्वरीलाल बोले—"इस कष्ट की क्या आवश्यकता थी ?"

जाह्नवी इस औपचारिकता को अधिक लम्बा खींचना नहीं चाहती थी । अतः बात को संक्षिप्त करती हुई बोली—"बड़ी कृपा हो, यदि आप अब लस्सी पी लें । क्योंकि इस समय मैं थोड़ी देर के लिए भगवान् का भजन करना चाहती हूँ ।"

परमेश्वरीलाल संकुचित हो उठे और बोले—"सचमुच मैंने आप
बहुत समय ले लिया।"

परमेश्वरीलाल जाह्नवी के अनुरोध के विचार से झटपट लस
प्राप्त कर, रूमाल से मुँह पोंछते हुए, खड़े होकर बोले—"अ
ब चलूँगा।"

जाह्नवी ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"क्षमा कीजियेगा, आज
आप से कुछ भी बातें नहीं कर सकी।"

परमेश्वरीलाल ने अवसर पाकर कह दिया—"मैं किसी दिन फिर आऊँगा। थोड़े से सम्पर्क में ही मुझे ऐसा कुछ मिल गया है, जो मेरे लिए चिर-स्मरणीय रहेगा।"

सावधान जाह्नवी बोल उठी—"आप तो मुझे लज्जित कर रहे हैं!"

भावाविष्ट परमेश्वरीलाल फिर ठिठुक गये। जाह्नवी की पलकों पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने कह दिया—"अपने को व्यक्त करने में मैंने सदा मौन का सहारा लिया है। लेकिन ।"

सहसा स्तब्ध जाह्नवी अवाक् हो उठी। कम्पित हृदय से हाथ जोड़ती हुई बोली—"नमस्कार।"

परमेश्वरीलाल जब चलने लगे, तो हेम उनके पीछे लग गया। वह पीछे मुड़ कर बोले—"तुम बैठो बेटा।"

हेम ने उत्तर दिया—"चलिये, चलिये न मामाजी।"

जीने से नीचे उतरने के बाद हेम ने परमेश्वरीलाल से नमस्ते
और वापस लौट आया। परमेश्वरीलाल गम्भीर विचारों में लीन
बढ़ गए।

—:०:—

: ७ :

कई दिनों से घनघोर वर्षा हो रही थी। रात-दिन आकाश में बादल छाए रहते थे। न दिन में सूर्यदेव के दर्शन होते, न रात में चन्द्रदेव के। नगर में गाँव से ही अधिक दूध आता था। पर अब उस का नगर तक आना दुष्कर हो गया था। यही दशा साग-भाजी की थी। दफ्तरों के बाबू दोनों हाथों से पेंट या पाजामा उठाये, कोई पैदल, कोई साइकिल हाथ में लिए दृष्टिगत होते। भले घरों की नारियाँ तो घरों से बाहर निकल ही न पाती थीं।

नगर के स्वास्थ्य की यह दशा थी कि मलेरिया, निमोनिया और टाईफाइड के रोगियों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी। कभी जो बरसते हुए पानी में सड़कों से मृतकों के विमान निकलते, तो दुर्बल तन और कातर मन वाले नर-नारी राम के साथ सत्य का निर्घोष सुनकर अमांगलिक आशंकाओं से थर-थरा उठते।

इतना सब कुछ होते हुए भी जीवन की सर्वग्राही और सर्वव्यापक रचना का क्रम पूर्ववत् स्थिर था।

सूर्योदय हुए केवल एक घण्टाभर हुआ होगा। आज कई दिनों के बाद बादल हट गये थे। भवानी बाबू कमरे में बैठे-बैठे खुले आकाश को देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। अतीत के दिन उन्हें स्वप्न से लगते थे।

उस दिन राधेगोविन्द का स्मरण करते हुए उन्होंने माया से कहा

था—"अब तो घुटनों के बल चलने लगी होगी, सत्यवती। क्यों माया रानी ?"

प्रश्न सुनकर उसने कहा—'तो ललचा क्यों रहे हो ? अब तक तो उसके मुँह में नन्हें-नन्हें दाँत भी निकल आये होंगे, राधेगोविन्द दौड़ने लगा होगा। नाना न सही, नानी उसकी अंगुली पकड़े पास-पड़ोस के घरों में चक्कर लगाती होगी। गोकुल भैया उसे अपने साथ बैठाकर खाना खिलाते होंगे। भाभी कुढ़-कुढ़कर रह जाती होगी। मेरा क्या, मैं तो सौत ठहरी, पर तुमको तो एक बार देख आना चाहिए था। दीदी को छोड़ दिया है, लेकिन बच्चे कहीं छोड़े जा सकते हैं !"

माँ बरामदे में बैठी-बैठी झाड़ू लगाती हुई, नयी बहू की इन बातों को सुन-सुनकर मन ही मन कुढ़कुढ़ा रही थी—'सत्यवती रांड को तो मैं लेने से रही। हाँ, राधेगोविन्द को अलबत्ता किसी तरकीब से ले आना पड़ेगा।'

भवानी बाबू ने उत्तर दिया "अच्छी बात है। कपड़े धुल कर आ जायें, तो मैं दो-चार दिन के लिए वहाँ हो आऊँ।"

ससुराल में इस बात को लेकर पहले ही विग्रह हो उठा था। सास ने कहा था -"मैं अब राधेगोविन्द को किसी प्रकार न दूँगी। मुझे इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं कि तुम यहाँ नहीं आओगे तो एकादशी का जीवन बरबाद हो जायेगा।"

और एकादशी ने उत्तर दिया था—"मेरे जीते जी तो यह बच्चे तुम्हारे साथ जाने से रहे। मेरे मर जाने पर चाहे जो हो।"

सोचते-सोचते भवानी बाबू हँस पड़े—एकादशी ने जो बात कही थी, अन्त में यह सिद्ध होकर रही। गोकुल भैया के लड़का हुआ और

दो वर्ष के भीतर ही लड़की। तब भाभी ने एकादशी के साथ—राधे-गोविन्द और सत्यवती को लेकर विग्रह करना आरम्भ कर दिया—दूध-दुधाँड़ी में रखा रहता और भाभी कह देती—'दूध-ऊध अब नहीं रह गया।'

एकादशी ऐसी बातें सुनकर विचलित हो उठती। भाभी का यह दुर्व्यवहार जब उससे नहीं सहा गया, तब उसने अपनी माँ को इसका उलाहना दिया। अब घर में राज्य भाभी का था। वह स्वयं तो कोई काम न करती, पर बिना किसी संकोच के बोल उठती—'मेरी तबियत ठीक नहीं है। बर्तन-वर्तन मुझसे मले न जायँगे।'

लेकिन होता यह कि जब सारा काम समाप्त हो जाता, तब दस ही पाँच मिनट के अन्दर भाभी की तबियत ठीक हो जाती। खाना बनते ही एकादशी को माँ कह देती —"बैठी क्या हो? जाओ दुलहिन के पास, कहो जाके—आलू-मेथी का साग बना है। एक-आध फुलका खा ले आकर।"

तब तक भाभी की तबियत इतनी चंगी हो उठती थी कि वे इत्मी-नान से धूप में बैठकर गर्म पानी से नहा-धोकर अपनी बिटिया को गोद में दबाए पीढ़ा डालकर चौके के पास भोजन के लिए पूर्ण तत्पर हो जाती थीं।

होते-करते ऐसे भी दिन आये, जब राधेगोविन्द को जौ की सूखी रोटी नमक के साथ खानी पड़ती थी और गोकुल भैया की लड़ैती बिटिया के लिए बाजार से जलेबियाँ आ जाती, जो गरम दूध में भिगो कर, राधेगोविन्द को दिखा-दिखाकर गोकुल भाई के बच्चों को खिलायी जातीं।

एकादशी ने यह सब भी सहन किया था।

सोचते हुए भवानी बाबू एकाएक उठ बैठे। बोले—"अरे बिस्सू गा, प्रेम से कहो एक बार ससुराल तो हो आये।"

यह प्रेम माया का सौभाग्य-दीपक था। जिस दिन भवानी बाबू सुना कि एकादशी का स्वर्गवास हो गया, उसी दिन वह ससुराल जा पहुँचे थे। पड़ोस में एक बढ़ई मिस्त्री रहता था। एकादशी कभी-कभी उसके घर जाती रहती थी। ननद के नाते से वह उसकी स्त्री के पास बैठकर अपना मानसिक उद्वेलन आँसू भरे नयनों से प्रकट कर आती थी। उसकी सारी व्यथा-कथा उनको उसी से मालूम हुई थी। वे फूट-फूट कर रोये थे। संस्कार उन्हीं ने किया था। तभी वे पड़ोस के दो-चार व्यक्तियों के सामने गरजकर बोले थे—'जिन्होंने एकादशी की हत्या की है, वे अपने इस पाप का फल इसी जीवन में भोगकर मरेंगे!"

उन्होंने अपनी सास से भी स्पष्ट शब्दों में कहा था—'तुम हत्या-रिणी हो। तुम्हारा मुख देखना भी पाप है। मैं अपने बच्चों को अब तुम्हारे यहाँ किसी तरह नहीं छोड़ सकता।' पड़ोसियों ने स्पष्ट कह दिया—'यह तो आपका अधिकार है। हम लोगों को तो इसी बात का दुःख है जो आपने उन्हें यहाँ इतने दिन रहने दिया।' और वे उसी दिन शान्ति-संस्कार के पश्चात् सूर्योदय से पहले राधेगोविन्द और सत्यवती को अपने संग ले आये थे। सौभाग्य की बात कि उसी दिन घर पहुँचते-पहुँचते इस प्रेम का जन्म हुआ था।

बिस्सू की माँ बोली—"अभी आषाढ़ में ही तो उसका विवाह हु है। इतनी जल्दी उसको ससुराल भेजने की क्या जरूरत है?"

भीतर से उठते दारुण दुःखावेग को दबाए भवानी बाबू ने दिया—"जरूरत है, बिस्सू की माँ। तुम कुछ नहीं जानतीं। भेजो उसको।"

प्रेम सोकर उठा ही था। बिसू की माँ ने कहा—"जाओ, जाओ, अभी जाओ।"

प्रेम बोला—"कहाँ अम्मा ?"

"ससुराल और कहाँ ?"

"अभी, इतनी जल्दी ! मुझसे ऐसी बात मत किया करो, अम्मा !"

"तो मुझसे क्यों बिगड़ता है ? अपने बाप से क्यों नहीं कहता ? वही तो अभी कह रहे थे।"

"कौन, बाबू कह रहे थे ?"

"हाँ, पोते का मुख जल्दी-से-जल्दी देखने की एक हौंस भी तो होती है।"

"पर मुझे तो पहले अपनी शिक्षा की ओर देखना और भविष्य का नव-निर्माण करना है।"

"मुझे मालूम है। कलक्टर की कुर्सी खाली जो है !

"लो, तुम फिर मुझे व्यंग-बाणों से बिद्ध करने लगीं। कम-से-कम इतना तो सोचा करो कि तुम मेरी माँ हो। दुनियाँ के लिए सौतेली, लेकिन मेरे लिए सगी। मेरी स्त्री तुम्हारी दासी बन कर रहेगी। आने दो उसको, अगर उसने तुम्हारे पैर न दाबे, तो चमड़ी उधेड़कर रख दूँगा।"

दुर्गा हँस पड़ी। पान-भरे अरुण अधरों के भीतर कत्थई दाँत झलक उठे। बोली—"चल-चल, बहुत बातें बनाता है। सब देख लूँगी।"

"उसको तो तुम बाद में देखोगी, मुझको आज ही देखना।" प्रेम

ता में आकर बोला—"कल शाम को ट्यूशन का रुपया मिला जीवन की पहली कमाई का शुभारम्भ।" और इस कथन के उसने झट उठकर अपना रेशमी खादी का कुर्ता-टटोला, दस-दस पांच नोट निकाल कर उसके चरणों पर रख दिये और साथ ही द-रज मस्तक से लगा ली। बोला —"बस, अब हृदय की गाँठ खोल-कर, मुझे ऐसा आशीर्वाद दो कि विश्वविद्यालय में पहला नम्बर मिल कर रहे।"

दुर्गा को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह स्वप्न देख रही हो। बोली — "हजार वर्ष जियो बेटा प्रेम ! भगवान करे तुम्हारी सारी मनो-कामनाएँ पूरी हों।"

आँखों में आनन्दाश्रु छल-छला उठे। बोली—"कोई नहीं जानता कि किस के भाग्य का लिखा हुआ फल किसकी गोद में जा गिरता है !"

विकार सबके मन में होते हैं। पर उनके शमन, मांगलीकरण और निवारण की युक्ति और बुद्धि सबके पास नहीं होती।

प्रेम हर्ष-गद्गद् हो उठा। इतने में राधेगोविन्द की दुलहिन ने चाय की ट्रे उसके सामने रख दी। प्रेम ने आगे बढ़कर झट से बड़ी भाभी के पैर छू लिये। सत्यवती ने गरमागरम पकौड़ियाँ तश्तरी लाकर सामने रख दीं। वनलता अपनी चोटी की उमेठन ठीक कर हुई आ पहुँची और बोली—"भैया, रात मैंने एक सपना देखा। कि मैंने राखी जो तुम्हारी कलाई में बाँधी, तो तुमने मुझे रुपये एक नीला-नीला सा नोट निकाल कर मुझे दे दिया।"

प्रेम हँसने लगा और वनलता बोली - "लो तुम हँस र मगर तुमने यह नहीं पूछा कि ऐसा अवसर कैसे आया। सु

यह हुई कि पी० सी० एस० में तुम्हारा हो गया चुनाव और डिप्टी साहब जो तुम बन गये तो रुपया तुम्हारे पास खूब आने लगा।"

प्रेम ने कहा—"अच्छा, तो फिर तै रहा। मेरा चुनाव हो जाय, तो राखी बँधाई के सौ रुपये पक्के।"

"असल बात यह है चाचा जी"—प्रेम कह रहा था—"मैं बाबू जी के आग्रह से ही आया हूं। वैसे सच्ची बात यह है कि मेरा सारा ध्यान अभी अध्ययन में लगा हुआ है।

दामाद की बातें सुनकर परमेश्वरीलाल बोले—"ठीक है, ठीक है। मैं तुम्हारी इस भावना का आदर करता हूँ। फिर भी बेटा, यह अच्छा हुआ कि तुम आ गये। और कहो, तुम्हारे बाबू की तबियत कैसी है ?"

"तबियत वैसे ठीक है। वर्षा अधिक होने से पैरों के जोड़ों और पिंडलियों में थोड़ी पीड़ा होने लगी थी। पर अब वह भी शांत हो गई है।" प्रेम सोच रहा था—'सरोज ने मुझे बहुत गलत समझ लिया था। कितना अच्छा हुआ कि बाबू ने मुझे दो दिन के लिए—ठेलठाल-कर—भेज दिया।'

'चलो भगवान की बड़ी कृपा है। मुझे उनके स्वास्थ्य की बड़ी चिन्ता रहती है। आदमी क्या है, हीरा है··· · स्नान कर लिया कि नहीं ? ······कर लिया ? चलो, ठीक है। उबटन लगवाया था ? नाई को बुलवाया तो था मैंने सुरेश से ?"

प्रेम हँस पड़ा। बोला—"चाचा जी, आप मुझे अपना वैसा ही बच्चा समझिये, जैसा महेश तथा सुरेश भाई हैं। मैं अपने साथ कोई विशेषता नहीं चाहता। फिर अभी आप मेरी प्रकृति से परिचित नहीं। लोग माता-पिता तक से संकोच करते हैं। पर मैं किसी से सकोच

नहीं सकता ।...आप जानते हैं, संकोच शिष्टाचार का
शिष्टाचार में आत्मीयता नहीं, प्रदर्शन-परितृष्णा प्रच्छन्न
है कि नहीं ?"

मेश्वरीलाल ने लक्ष्य किया—प्रेम 'है कि नहीं' कहते क्षण बड़ा
लगता है।

"अच्छा तो अब", प्रेम फिर कुछ अटकता हुआ कहने लगा—
झे आप आज ही जाने की अनुमति .....मेरा अभिप्राय यह है कि
बू का अनुरोध तो पूरा हो ही गया। अब ..?"

"नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है! आये हो, तो रहो दस-पाँच
दिन। अभी तो मैं बाजार भी नहीं जा पाया हूँ।" परमेश्वरीलाल
बोले—"और यह भी मैं सोचता हूँ कि ऐसे समय महेश को भी यहाँ
उपस्थित होना चाहिए था। पत्र तो मैंने लिखवा दिया है। सोचता
हूँ, आज एक तार भी कर दूँ। तुमको परिवार का सम्पूर्ण सुख मिलना
चाहिए। सुरेश तुम से मिलने-जुलने में झिझकता है। उसे संकोच है
कि अभी मैट्रिक ही पास किया है, उसने। हेम भी दिखलाई नहीं
पड़ता है। तुमसे परिचय तो हुआ होगा। तुम्हारी ही भाँति वह भी
बड़ा होनहार है। पर अभी तक उसका भाग्य जग नहीं पाया।"

हेम का चाचा जी के साथ सम्बन्ध क्या है, प्रेम बिलकुल
जानता था। 'महेश का चुनाव भी हो गया। नौकरी अच्छी मिल
उसे। मगर उसकी पत्नी नहीं दिखाई पड़ी। नौकरी लगते ही,
पड़ता है, वह उसे अपने साथ ले गया है। सरोज कुछ बतला तो
थी, पर उस समय मुझे नींद आ रही थी।' सोचता हुआ प्रेम बो

"चाचा जी यह हेम कौन है, आपने बतलाया नहीं।"

"हेम!" परमेश्वरीलाल कुछ संकोच में पड़ गये। बोले

अतः उसने कह दिया—'आपका अनुभव अधिक है। मेरे लिए आप बाबू के समान हैं। पर एक बात मैं नहीं समझ सका कि जब ने को ही देखकर चलना है, तो फिर सहानुभूति और मानवता—हयोग और सेवा, धर्म और कर्त्तव्य की बात को उठाने और मुँह पर ाने की क्या आवश्यकता है? तात्पर्य यह है कि आपको दूसरों का दुःख देखकर दुःख होता है और आप इसके लिए कुछ करना भी चाहते हैं। फिर भी परेशान हैं कि कुछ कर नहीं सकते। मैं तो इसको स्पष्ट आत्म-प्रवंचना समझता हूँ। बात केवल सिद्धान्त की है व्यक्तिगत रूप से मेरा कोई उपालम्भ नहीं। है कि नहीं चाचा जी?"

परमेश्वरी बाबू विचार में पड़ गये। किन्तु तब तक सुरेश ने आकर कह दिया—"बाबू, आप जरा अन्दर हो आइये।"

परमेश्वरीलाल अन्दर जो गए तो क्या देखते हैं, सरोज अचेत पड़ी है। न कोई उत्तर देती है—न आँखें खोलती है।

प्रेम ने जब सुना, तो उसका मन चिन्ता में पड़ गया।

—:०:—

"मैं किसी विरोधी की परवाह नहीं करती। मुझे इस बात की
न्ता कभी नहीं हुई कि लोग क्या कहते हैं।"

"एक युग था, जब इस प्रकार की घोषणायें महत्व रखती
ीं। पराभूत और दुर्बल जन एक बार आतंकित हो उठते थे, वह
ामन्तवादी युग था। आज स्थिति बदल गयी है। आज जो व्यक्ति
अपना दल और वर्ग बनाकर अपने आप एक संगठित शक्ति बनकर
नहीं रहता, वह जीवन में कभी महान कार्य नहीं कर सकता।"

"फिर वही कोरा सिद्धांत-निरूपण—फिर वही नेता मार्का प्रवचन।
तुम्हें जो कुछ कहना है साफ-साफ क्यों नहीं कहते ? क्या किसी ने मेरे
विषय में तुमसे कुछ कहा है ?"

"तुमने जाह्नवी को ठीक तरह से समझने का प्रयत्न नहीं किया
मल्लिका ! मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि तुमने उसके साथ
अन्याय किया है।"

"क्यों, क्या तुम से भेंट हुई थी ? सच-सच बताओ।"

"हुई थी भेंट। शोभा के विवाह के प्रीति-भोज में। अपनी ओर
से वह केवल करबद्ध नमस्कार करके रह गई थी। तब मेरे मुँह
निकल गया 'आजकल दिखाई नहीं देती हो। सखी के साथ मतभेद
गया था मिल-जुलकर कोई मध्यम मार्ग निकाल सकती थीं। ऐ
कुछ न करके संस्था को एकदम छोड़ देना तो ठीक नहीं हुआ।
पास सन्देश और उपालम्भ आ रहे हैं कि आप लोगों ने यह
किया ? मेरी स्थिति आप जानती हैं—ऐसी दुर्बल है कि पग-प
बहुत टोह-टोह कर चलना होता है। फिर जब कोई विषय मेरे
ही न आये, तो मैं कर ही क्या सकता हूं ?' इस कथन का उन्हों
उत्तर दिया 'मुझे व्यक्तिगत रूप से आप से कोई शिकायत
मैं केवल इतना ही कहना चाहती हूं कि आज नहीं तो कल-

एक दिन अवश्य ही—दीदी का भ्रम दूर हो जायगा। समय बड़ी-बड़ी खाइयाँ पाट देता है। मेरा यह घाव भी किसी दिन पुर ही जायगा।'

मल्लिका ने अनुभव किया था कि आवेश में आकर सचमुच मैंने अनर्थ कर डाला है। चारों ओर से उलाहने-पर उलाहने आ रहे थे। शोभा के त्यागपत्र पर तो शाल्मली की स्थिति बड़ी डावांडोल हो रही थी। प्रबन्ध समिति के ही कई सदस्य इस पक्ष में हो गये थे कि उन्हें पृथक् कर दिया जाए। अविश्वास का प्रस्ताव भी उसमें आ चुका था। अनारकली ने सहायता बन्द कर देने की धमकी दी थी। कई दिन मल्लिका को दौड़ना पड़ा था। शोभा को मनाने में तो उसे नाटकीय अभिनय तक की शरण लेनी पड़ी थी। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि यह विषय इतना तूल पकड़ जायगा। कई लड़कियों के अभिभावकों ने स्पष्ट कहा था कि जाह्नवी देवी अगर विद्यालय में नहीं बुलाई जायेंगी, तो हम अपनी लड़की को दूसरे विद्यालय में भेजने को विवश होंगे।

फिर भी मल्लिका के भीतर, अन्तर्मन में, एक सर्वग्रासी अहंकार जाग्रत हो उठा था। उसने यह प्रतिज्ञा करली थी कि कुछ भी हो, संस्था के गौरव को मैं सर्वथा अक्षुण्ण बनाये रखूंगी। जब-जब ऐसे अवसर आये, तब-तब उसने यही उत्तर दिया—"जो संस्था किसी एक व्यक्ति के बिना न चल सके, मैं उसको संस्था नहीं कुटी समझती हूं। संस्थायें पारस्परिक सहयोग से चला करती हैं। यदि कोई व्यक्ति संस्था को अपना सहयोग न देना चाहे, तो इसके लिए हम उसे विवश कैसे कर सकते हैं ?"

पर अन्त में जब अनारकली ने भी फोन पर मल्लिका से कह दिया —"जाह्नवी देवी को पुनः नियुक्त न किया गया, तो मेरे यहाँ से जो सहायता विद्यालय को मिलती है, यह मुझे बन्द कर देनी पड़ेगी।"

त्तर में मल्लिका ने कहा—"इस विषय में आपका भ्रम दूर
के लिए मैं स्वयं आ रही हूँ।"

जब मल्लिका अनारकली के यहाँ पहुँची, तो अनारकली ने उसे
पूर्वक पास बैठालते हुए पूछा—"कहिए, आजकल आपका स्वास्थ्य
ठीक है ?"

मल्लिका ने अनुभव किया—'यह तो मानना ही पड़ेगा कि अनार-
कली अपने वर्ग में सर्वाधिक सभ्य है।'

"लीजिए, पान खाइए। ··मगर हाँ, इससे पहले आप लस्सी ले
लें, तो उत्तम होगा।"

अनारकली ने बटन दबा दिया, तत्काल एक परिचारिका उपस्थित
होकर बोली—"आज्ञा ?"

मल्लिका बोल उठी—'क्षमा कीजिए, मैं इस समय लूँगी कुछ
नहीं।"

"वाह, ऐसा कैसे हो सकता है ? कुछ फल ही ··"

परिचारिका बोली "अभी लाती हूँ।"

"हाँ, अब कहिये, हृदय की ग्रंथियाँ खोलकर, निस्संकोच
होकर ?"

मल्लिका ने धीरे-धीरे मन्द स्वर में अपना पक्ष रखते हुए कहा—"
"आपकी सहायता विद्यालय के संचालन में योग-दान के लिये है।
उसका उपयोग सभी छात्राओं के लिए होता है, किसी एक व्यक्ति के
लिये नहीं। संस्था के हित में आपके लिये यह उचित नहीं कि आ
हमारे ऊपर अनुचित दबाव डालें। जाह्नवी देवी के लिये यदि आप
मन में कोई विशेष भावना हो, तो बात दूसरी है। किन्तु उनका
लेकर ऐसी भावना मन में लाना विद्यालय की सम्पूर्ण छात्राओं के

आपका घोर अन्याय होगा। मुझे बड़ा खेद है कि आपने बिना सोचे-समझे ऐसी बात कह कैसे डाली ? मुझे विश्वास है कि आप इस विषय पर पुनः विचार करके अपनी दूरदर्शिता का परिचय देंगी।"

अनारकली कुछ गम्भीर हो उठी। भाषा का संयम सुरक्षित रखते हुए उसने कुछ तीव्र होकर उत्तर दिया—"मैं आपकी नीति से परिचित हूँ। केवल इस घटना से नहीं और भी कई घटनाओं से। मैं जानती हूँ कि आप अध्यापिका वर्ग के सर्वस्व-समर्पण की भूखी रहा करती हैं। व्यक्तिगत जीवन में तो यह प्रवृत्ति निभ भी सकती है, किन्तु सार्वजनिक जीवन में इसका निर्वाह और पालन कदापि सम्भव नहीं। कोई भी व्यक्ति, आज के जीवन में किसी का क्रीत दास नहीं बन सकता। मुझे मालूम है कि जाह्नवी देवी ने नाटक के अभिनय में भाग लेने से इन्कार कर दिया था। विद्यालय में और भी कुछ छात्रायें थीं, जिन्होंने अभिनय में भाग लेना स्वीकार नहीं किया था। आपने एक तो जाह्नवी देवी पर व्यवस्था भंग करने का दोषारोपण किया और दूसरे उन पर यह भी लाछन लगाया कि उन्होंने नाटक के साथ सहयोग न करने के लिए उन्हें भड़का दिया है। मैंने व्यक्तिगत रूप से अनुसंधान किया, तो मुझे कई ऐसी बातों का परिचय मिला, जिनका आपको बिल्कुल ज्ञान नहीं है। जाह्नवी देवी से जब मैंने बात की तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आपका उनके व्यक्तित्व के साथ ही नहीं, गौरव के साथ भी द्वेष है। आप चाहती थीं कि मीरां के अभिनय में वे उसके आन्तरिक द्वन्द्व का ही, अभिनय न करें वरन् नृत्य और संकीर्तन तथा गायन में भी पूरा भाग लें। पर आपने उनके साधना-रत जीवन पर ध्यान नहीं दिया। आपने यह नहीं अनुभव किया कि उन पर कैसा [illegible] वज्रपात हुआ है—उन्हें कितना दुःख और सन्ताप है ! एक [illegible] जो रात-दिन पति के वियोग में आहें भरती और [illegible]

करती हूँ। परन्तु कला के नाम पर मैं आचार-निष्ठा की कभी उपेक्षा नही कर सकती।"

मल्लिका देवी उठकर खड़ी हो गयी और एक निःश्वास लेकर बोली—"अच्छी बात है। आप अपनी सहायता बन्द कर दीजिये।"

"बैठिये-बैठिये मल्लिका देवी"—अनारकली ने बगल वाली कुर्सी के हत्थे पर हाथ रखते हुए कहा। "क्षमा करें, अब इस विषय में कुछ कहने की कोई आवश्यकता नही है।"

वह जाना ही चाहती थी कि तब तक फलों की तश्तरी उनके सामने आ गई।

/

स्वामी की बात सुनकर मल्लिका देवी को अनारकली [illegible] सारा वार्तालाप स्मरण हो आया। फिर इस विषय पर [illegible] धारण कर लिया। कही एक बजे रात उन्हें नींद आई। [illegible] हुआ। शेफाली पहले उठा करती थी। निकट आकर [illegible]—"[illegible] उठो न अब? देखो सवेरा हो गया।"

उस समय जंगली बंगले में झाड़ू [illegible] भोजन बनाने वाली महाराजिन फाटक के [illegible] गमलों के फूल-पौधों को फव्वारे से सींच [illegible] और आँखें मलती-मलती सीधी [illegible] बाबू अभी घूमकर लौटे न थे और [illegible] शेफाली ने रिसीवर कान से [illegible] पाण्डेय का फोन है।

शेफाली ने उत्तर दिया—"डैडी तो घूमने गये हैं।"

पाण्डेय जी बोले—"अच्छा, जब वह घूमकर आ जायें, तो तुम उन्हें मेरे यहाँ भेज देना।"

शेफाली ने रिसीवर रख दिया।

पाण्डेय जी पहले इलाहाबाद में मुंसिफ थे। शोभा से उनका विवाह हो गया था और अब वे बदलकर कानपुर आ गये थे।

मल्लिका ज्योंही स्नानागार से निकलीं, त्योंही घनानन्द बाबू आ गये। शेफाली उनके निकट आकर बोली—"डैडी, डैडी, तुमको पाण्डेय जी ने याद किया है।"

"पाण्डेय जी ने! क्यों?"

"अब यह मैं क्या जानूँ? फ्रेंड तुम्हारे और तुम्हीं पूछते हो, क्यों?"

मल्लिका की आँखें लाल हो रही थीं। मुखश्री म्लान थी। ज्योंहि घनानन्द बाबू अपने कक्ष की ओर मुड़ने लगे, त्योंही मल्लिका बोली "जरा इधर आओ। तुमसे एक आवश्यक सलाह करनी है।"

घनानन्द बाबू ने समर्थन करते हुए कह दिया—"कहा है—स ही ब्रह्म का रूप है। क्योंकि सारे विश्व का शासन स्वरों होता है।"

पलक गिराते-उठाते विस्मयात्मक मुस्कान के प्रकार में श बोली—"ऐसा!" फिर अपने उस कक्ष में चल दी।

मल्लिका के कक्ष में जाकर बैठते ही घनानन्द बाबू सम्बोधित करते हुये कहा—"जान पड़ता है, तुम्हारे स्वाभि गहरा आघात पहुँचा है।"

मल्लिका की आँखों में आँसू छलक उठे। इसी बीच नौकर चाय की ट्रे सामने रख कर चला गया।

धनानन्द बाबू बोले—"चिन्ता मत करो। समस्या का कोई-न-कोई समाधान शीघ्र निकल आयेगा।"

रूमाल से आँसू पोंछती हुई मल्लिका बोली—"अगर मैं विद्यालय की सेक्रेटरीशिप से त्याग-पत्र दे दूँ, तो शाल्मली की स्थिति डाँवाडोल तो न हो जायगी?"

धनानन्द बाबू राजनीति-कुशल व्यक्ति थे। उनके मुँह से निकल गया—"देखो मल्लो, एक बात तुम्हें सदा स्मरण रखनी चाहिए कि सबसे पहले इस विश्व के लिए हम हैं, उसके पश्चात् और कुछ। तुम्हें सबसे पहले अपनी मर्यादा रखनी है। ऐसा न होना चाहिए कि शाल्मली देवी की रक्षा में तुम अपना गौरव खो दो।"

"पर विद्यालय की सेक्रेटरीशिप से पृथक हो जाने का अर्थ है, मेरा मरण।" मल्लिका छन्नी में चीनी डालकर उस पर चाय ढालती हुई बोल उठी—"मैं इस अघात को सहन न कर सकूँगी।"

धनानन्द बाबू मुस्कराने लगे। उन्होंने चाय पर दुग्ध की मन्द धार छोड़कर कहा—"तुम्हारा भोलापन अब तक नहीं गया। राजनीति में सभी कार्य सच्चाई और गम्भीरता के साथ नहीं होते। प्रत्येक पग अपने पीछे एक विशेष अभिप्राय रखता है। शतरंज की किसी गोट को जब हम स्थानान्तरित करते हैं, तब—और उसके बाद जब हम उसे पुनः दूसरे घर में ले जाते हैं, तब भी—यह निहित रहता है कि उसका भावी उपयोग सर्वथा क्रांतिकारी होगा। मेरे कहने से तुम एक बार त्याग-पत्र देकर देखो तो! मुझे पूरी आशा है कि इसका प्रभाव शोभा रानी और अनारकली पर तुम्हारे पक्ष में ही पड़ेगा।"

मल्लिका चाय पी रही थी और धनानन्द बाबू की बातों पर गंभीरता से विचार भी कर रही थी।

—: ० :—

: ९ :

प्रेम और महेश कानपुर के एक कालेज में साथ-साथ पढ़ चुके थे। दोनों में बड़ी आत्मीयता थी, किन्तु कालेज के विद्यार्थी-संघ के वार्षिक निर्वाचन में मनोमालिन्य कर बैठे थे। प्रेम ने महेश से परामर्श किये बिना सभापति पद के चुनाव में मनोनयन-पत्र भर दिया था। बस बात कुल इतनी थी। महेश ने जब सुना, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

मनोनयन-पत्र भर देने के अनन्तर जब दोनों की भेंट हुई तो प्रेम ने कहा—"यार एक बेवकूफी कर बैठा हूँ। शारदा प्रसाद के कहने से मैंने सभापति पद के लिए मनोनयन-पत्र भर दिया है। आज उसकी अन्तिम तारीख थी। तुमसे सलाह करने का भी समय नहीं मिला। तुम जानते हो, शारदा राजनीति का विद्यार्थी है। अपने विषय में वह सदा यही सोचता रहता है कि जहाँ तक कूटनीति का सम्बन्ध है, कोई व्यक्ति उसका सामना नहीं कर सकता। इस तरह मैं उसकी बातों में आ गया। मनोनयन-पत्र भर तो आया हूं, पर अब भगवान मालिक हैं।"

महेश अपने मनोभावों को गुप्त रखने वाला व्यक्ति था। प्रेम की बात सुनकर सोचने लगा 'मुझसे पूछे बिना पहले तो मनोनयन पत्र भर दिया। अब मुझे उसकी सूचना मात्र देकर मेरा सहयोग प्राप्त करना चाहता है।'

प्रेम को सन्देह हो उठा। सोचने लगा—'जान पड़ता है इसको ईर्ष्या हो रही है।' उसका अनुमान सत्य था। महेश मन ही मन कह

रहा था —'लोहे के चने चबवा दूंगा, बच्चू को आटा-दाल का भाव मालूम पड़ जायगा।'

इसी समय प्रेम बोल उठा—"अरे, तुम सोचने क्या लगे महेश ! मैं तो तुम्हारे ही भरोसे पर फूलता हूं। विश्वविद्यालय में ऐसा कौन है, जो हम लोगों की मित्रता से परिचित न हो ! मेरी विजय वास्तव में तुम्हारी विजय होगी। और यदि कहीं हार गया, तो मेरे साथ-साथ तुम्हारी बदनामी भी कम न होगी। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना।"

महेश सोचने लगा—'अब कैसी बातें चुपड़ रहा है ! मुझे मिलाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। मगर मैं इतना बुद्धू नहीं हूँ, जो इसकी मढ़ी में आ जाऊँ।'

उसने उत्तर दिया —"बड़ा अच्छा किया। जीत जाओगे तो मुझ से बढ़कर प्रसन्नता किसी को न होगी। पर मेरी स्थिति बड़ी चिन्ताजनक है। तुमने मुझे पहले से बतलाया नहीं। नहीं तो कोई बात न थी। तुम्हारे सिवाय मैं भला किसका समर्थन करता ? पर अभी-अभी पूर्णचन्द्र मेरे पास आया था। पहले तो मैंने कोरा जवाब दे दिया कि मैंने अभी इस विषय में कुछ सोचा नहीं है। फिर मैंने कहा, 'अगर प्रेम, का हित बाधक न हुआ और उसने किसी को वचन न दे दिया होगा तो मैं तुम्हारा साथ देने पर विचार करूँगा'।"

प्रेम को कुछ कहने का अवसर न देते हुये महेश आगे बोला—"मेरे इस उत्तर को सुनकर पूर्णचन्द्र मर्माहत हो उठा और बोला—'प्रेम ने तो शारदा के बढ़ावे में पड़कर मनोनयनपत्र मात्र भर दिया है। मुझ से संघर्ष करने की उसकी कतई इच्छा नहीं है। और अगर ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न भी हुई, तो हम लोग मिलकर किसी ऐसे

निश्चय पर पहुँचने की चेष्टा करेंगे, जिससे परस्पर कोई संघर्ष उत्पन्न न हो। अतएव अब मुझे वचन दो कि मेरा साथ दोगे।'—तुम जानते हो, यह पूर्णचन्द्र सदा से मेरा विरोधी रहा है। पर यार, इस बार तो वह मेरे साथ ऐसी शालीनता से पेश आया कि मैं प्रभावित हो गया। परिणाम यह हुआ कि मुझे उसको सहायता के लिए वचन देना पड़ा।"

इस उत्तर में एक भी बात महेश ने ऐसी नहीं कही थी, जो सत्य होती। सभी बातें उसकी तात्कालिक कल्पना की उपज थीं। बातें होना दूर रहा, उसके पास पूर्णचन्द्र आया तक न था। किन्तु महेश को तो जलन इस बात की थी कि यह—अब इस सीमा तक—अहंकारी और दम्भी हो गया है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर मुझ से सलाह लिये बिना जो मन में आता है, कर बैठता है। यह बात इसके मन में क्यों न आयी कि महेश को ही क्यों न खड़ा किया जाए? इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि यह अपने आपको मुझ से अधिक समझता है।

प्रेम को पहले तो महेश के इस कथन पर विश्वास ही न हुआ। उसने सोचा—'यों ही मुझे चिढ़ाने के लिए कह रहा है।' अतः उसके मुँह से निकल गया—"मजाक छोड़ो। सच-सच बतलाओ, क्या वास्तव में तुमने पूर्णचन्द्र को वचन दे दिया है?"

महेश इस उत्तर को सुनकर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचा—'अब पड़े हैं बच्चू निन्यानवे के चक्कर में।' उसने गम्भीर बनकर तुरन्त उत्तर दे दिया—"तुमसे झूठ बोलने से भला मुझे क्या मिल जायगा!"

प्रेम निराश होकर लौट आया—फिर दोनों का साथ एक दम छूट गया। पास बैठकर निरन्तर मनोविनोद करने वाले, साथ बैठकर दूसरों को बनाते हुए नित्य खाने-पीने वाले, हाथ में हाथ डाल कर सड़कों पर चहलकदमी करने वाले, पढ़ते-पढ़ते ऊबकर एक दम से

सिनेमा देखने को तत्पर हो जाने वाले दो व्यक्ति सर्वथा पृथक हो गये थे। प्रेम सोचता था—"मैंने कितने स्नेह के साथ इससे सहयोग की प्रार्थना की थी? पर इसने उस पर जरा भी ध्यान न दिया! क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि इसके मन में चोर था? यह स्वयं संघ के सभापतित्व के लिए लालायित था, तो इसने मुझसे स्पष्ट कहा क्यों नहीं? क्या मैं उस दशा में इसके साथ सहयोग न करता? फिर इसने तो जीवन भर की आत्मीयता पर पानी फेर दिया! मनुष्य की परख ऐसे ही समय होती है इसने मुझे ऐन वक्त पर धोखा दिया।'

कभी-कभी प्रेम हेम से भी मिलता रहता था। एक रेस्तोरां में पास ही पास बैठे हुए दोनों चाय पी रहे हैं। हेम दुबला-पतला, विनयशील और मनस्वी। सदा मुस्करा कर बातें करता। किसी कार्य के लिए कभी कहो, इन्कार कर ही न सकेगा। प्रेम के समर्थन में दौड़-धूप करते-करते थककर चूर-चूर हो गया था। प्रेम स्वयं भी बहुत उद्विग्न था। बोला—"कहो, क्या स्थिति है?"

हेम ने उत्तर दिया—"स्थिति गम्भीर है। महेश चारों ओर इस बात का प्रचार कर रहा है कि कुछ भी हो, मैं इस विषय में अन्त तक तटस्थ रहूँगा। अगर मैं पूर्णचन्द्र को सहयोग न दूँगा, तो प्रेम को भी नहीं दूँगा।'

प्रेम विचार में पड़ गया। फिर सहसा कुछ सोचकर बोला—"मैं अगर हार गया, तो क्या महेश की बदनामी न होगी? उसके साथ मेरे कैसे सम्बन्ध रहे हैं, सभी जानते हैं।"

"जानते हैं। मगर साथ में यह भी जानते हैं"—हेम अंगुलियाँ चटकाते हुए बोला,—"कि इस विषय में उसका सहयोग तुम्हें प्राप्त नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिए, हमारे सैकड़ों मत तो इसी आधार पर विरोध में चले जायेंगे।"

"यहीं लोग गलती करेंगे । महेश क्या खुले तौर पर यह कहने को तत्पर हो सकता है कि विश्व-व्यापी शान्ति के लिए भारत की तटस्थ नीति श्रेयस्कर नहीं ? महेश क्या यह मानने को तैयार है कि अपने देश के अन्दर विदेशी उद्योग का पैर जमने देना राष्ट्र की समृद्धि के लिए कभी निरापद नहीं हो सकता ? मेरी विचारधारा तो प्रचारित और प्रसारित परिपत्रों से स्पष्ट हो ही चुकी है । ऐसी दशा में उसका चुप बना रहना भी क्या उन स्थितियों के साथ उसका आन्तरिक विरोध करना न होगा, राष्ट्रीय हित से जिनका बड़ा ही घना सम्बन्ध है ?"

"उसका कहना है कि जब इस विषय में मेरा कोई सहयोग नहीं, तो कोई असहयोग भी नहीं । कुछ कारणों से मैं इस निर्वाचन में कोई सक्रिय भाग लेने को तैयार नहीं ।"

"निर्वाचन में सक्रिय भाग न लेने का अर्थ है वह मौन, जो अग्नि-काण्ड के समय अपनी छत से विध्वंस को खड़े-खड़े देखे और फायर-ब्रिगेड स्टेशन को सूचना देने के लिए फोन तक नहीं करे ।"

प्रेम को गरजता हुआ देखकर हेम मुस्कराने लगा । बोला —"ऐसा ही है, तो तुम इसी निमित्त एक सभा क्यों नहीं कर डालते ? अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए महेश को सर्वथा विवश क्यों नहीं क[र] देते ?"

"हाँ यार, कहते तो ठीक हो" । प्रेम यकायक चौंकता हुआ बोला —"एक सभा का आयोजन करना ही होगा ।"

फिर वह कुछ विचार में पड़ गया ।

इतने में हेम बोला—"और भी एक बात है । महेश अगर खु तुम्हारा समर्थन करने को तत्पर नहीं, अगर वह अन्दर ही तुम्हारी विजय से जलता है, तो तुम इसे भी स्पष्ट क्यों नहीं कर

भीतर ही भीतर अग्नि सुलगाने की अपेक्षा यह कहीं उत्तम होगा कि लपटें जल्दी से जल्दी बाहर आ जाएँ—संसार एक बार देख तो ले कि कौन कितने पानी में है।"

"तो ऐसा करो कि अभी तुरन्त एक संक्षिप्त भूमिका के साथ महेश से कहो कि जो कुछ हुआ सो हुआ। अब इतना काम तो कर ही दो कि एक परिपत्र छपवाकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दो।"

हेम की बात प्रेम की समझ में आ गयी, वह महेश से मिलने के लिए चल पड़ा।

प्रेम के आने पर महेश ने हँसते-हँसते उससे हाथ मिलाया। उसे चाय पिलायी और फिर साथ ही साथ बैठकर भोजन किया। रात में भी देर तक दोनों वार्तालाप करते रहे।

परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन ही एक ऐसा परिपत्र प्रकाशित हो गया, जिसमें उन सभी व्यक्तियों के नाम निवेदकों में दिये हुए थे जिन्हें प्रेम का समर्थक समझा जाता था। किन्तु महेश ने अपना नाम उसमें फिर भी न दिया था। उसका कहना था कि तुम्हारी और सब बातें मैं स्वीकार कर लूँगा, पर खुलकर तुम्हारे पक्ष में मत-संग्रह करने के लिए दरवाजे-दरवाजे कभी न दौड़ूँगा।

"क्यों, इसका क्या अर्थ है?" प्रेम ने पूछा।

मुस्कराते हुए महेश ने उत्तर दिया—"अर्थ-वर्थ मैं कुछ नहीं जानता। कोई अर्थ इसका लगाना भी नहीं। मालूम नहीं क्या बात है? – कदाचित् मैं स्वयं अपने भीतर स्पष्ट नहीं हूँ। अधिक से अधिक बस इतना ही कह सकता हूँ।"

फिर कथन के साथ वह मुस्कराने लगा।

प्रेम ने अनुभव किया, यह कुछ वैसी ही मुस्कराहट है जो दम लेने

...द भुजंग की होती है। वह कुछ विचार में भी पड़ गया। नाना ...र के प्रश्न उसके भीतर उठने लगे।

—मैंने इससे क्षमा माँग ली। फिर भी इसके मन का मैल न ...टा। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि अब भी इस की द्वेषाग्नि ...ान्त नहीं हुई ?

—मेरे लिए दरवाजे-दरवाजे दौड़ने में इसे संकोच होता है। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि यह अपने अहं की तुष्टि के लिए मेरी मान-हानि का आह्वान करने को तत्पर है।

—अपने दल का पूर्ण समर्थन प्रकट करते हुए भी यह अपने व्यक्तित्व को आगे नहीं रखता। तो क्या यह मेरे ईस निर्वाचन को एक नाटक बनाना चाहता है ?

उधर प्रेम ने देखा, महेश के निकाले हुए एक ही परिपत्र ने स्थिति में बड़ा सुधार कर दिया है। यत्र-तत्र लोग कहते फिरते हैं—'इस परिपत्र की शैली पुकार-पुकार कर कह रही है कि यह महेश का लिखा हुआ है। यार यह आदमी है बड़ा विचित्र।'

प्रेम ने पुनः हेम से परामर्श किया। प्रेम ने सारी परिस्थिति उसके सामने स्पष्ट रूप से रख दी। उसने कहा—"मैं तुम्हारे कहने से एक बार उसके पास जाकर नाक रगड़ चुका हूं। अब चाहे मैं हार ही जाऊं पर किसी काम के लिए उससे कुछ न कहूँगा। यों भी तरह-तरह की बातें फैल रही हैं। निवारण कहता फिरता है—यह लो, देखो, प्रे... के समर्थकों में मेरा नाम दे दिया और इसके लिए मुझसे पूछा त... नहीं ! सुनते हैं—वनमाली ने रेस्तोरां में बैठे दस-बारह व्यक्तियों ... सामने कहा है—भई यह ढंग मैं पसन्द नहीं करता कि पर्चे में नाम ... से पहले पूछना तो दूर रहा, मुझे सूचना भी न दी जाय ! और सु... तो बड़बड़ा रहा था—जब मैं [illegible] के दल में सम्मिलित हो गय...

तब प्रेम के समर्थकों में मेरा नाम दे देना छात्र-संघ की आँखों में धूल झोंकना है। मुझे इस पर्चे का उत्तर देना पड़ेगा।"

हेम मुस्कराने लगा। बोला—"निर्वाचन के समय इन बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। अगर उसने ऐसा किया भी तो उसी की स्थिति संकट में पड़ जायेगी। ऐन वक्त पर पूर्णचन्द्र का समर्थक बन जाने के कारण जवाब देते-देते वह स्वयं घबरा उठा है। फिर उसकी ऐसी स्थिति भी नहीं है कि जवाब देने के लिए पर्चा छपवाये। टका तो वह खर्च कर नहीं सकता।"

प्रेम के मुँह से निकल गया—"अच्छी बात है। तुम्हारा यह धैर्य, विवेक और नीति-निर्देशन मैं कभी नहीं भूलूँगा। जो कुछ होना हो, वह हो जाय। मैं सब कुछ सहने के लिए तत्पर हूँ।"

सरोज अपने कक्ष में उदास-उदास बैठी थी। पलंग के निकट की खिड़की खुली हुई थी और रिम-झिम रिम-झिम वर्षा की फुहार गिर रही थी। प्रेम को आये आज दूसरा दिन था। वह सोच रहा था कि सरोज को मूर्छा आने के क्या कारण हो सकते हैं। एक ओर वह अपने संकल्प पर दृढ़ रहना चाहता था। दूसरी ओर वह सरोज का समाधान भी कर देना चाहता था। उसके मन में द्वन्द्व चल रहा था। वह अपने आप से लड़ रहा था। उसका पलंग कक्ष में उत्तर की ओर था। उस समय रात के तीन बजे थे। अब भी उसके हाथ में एक पुस्तक थी। उसका विषय था—व्यावहारिक मनोविज्ञान।

एकाएक प्रेम ने पुस्तक रख दी और सरोज से पूछा—"अच्छा सरोज, अगर कोई ऐसी घटना हो जाय कि मैं इस संसार से सदा के

लिए विदा हो जाऊँ, तो तुम अपने जीवन के साथ किस तरह पेश आओगी ? मतलब यह कि अकस्मात् स्वप्न टूट जाने पर जैसे हम यह सोचने लगते हैं कि चलो ठीक है, कहीं कुछ भी नहीं बिगड़ा है। हम जहां के तहाँ स्थिर हैं। हमारा संसार ज्यों का त्यों बना हुआ है। बिल्कुल इसी भांति तुम अपना जीवन व्यतीत कर लोगी, या तुम्हारे मन में कोई ऐसी कल्पना उभर उठेगी कि मरण तुम्हें प्यारा लगेगा ?"

सरोज एकदम से चौंक पड़ी। अवाक्, स्तब्ध ! और उसने कह दिया—"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, आज कहा सो, कहा, भविष्य में फिर कभी ऐसी बात न कहना। तुम्हें शायद यह बात न मालूम होगी कि मैं तुम्हारी आन पर प्राण दे सकती हूँ। मैं निराहार रहकर तुम्हारी प्रतीक्षा में द्वार के निकट खड़ी-खड़ी जीवन की अन्तिम घड़ी तक स्थिर अडिग बनी रह सकती हूँ। कभी तुम्हारे मन में कोई अन्यथा जैसी चीज आये तो तुम मुझे अपने हाथ से विष पिला सकते हो। कभी चूँ नहीं करूँगी। आंसू मेरी आँखों से नहीं निकलेंगे। प्यासी की प्यासी ही बनी रहकर सदा के लिए शान्त हो जाऊँगी। जब तुम मेरा दाह-संस्कार करोगे, तब मेरी जलती हुई अस्थियाँ भी पुकार-पुकार कर कहेंगी कि मैं केवल तुम्हारी थी—मैं केवल तुम्हारी थी।"

प्रेम ने देखा—सरोज का कण्ठ भर आया है। आँखों से आंसू टपक रहे हैं। शरीर का लोम-लोम एक बार क्रन्दन कर उठता है।

प्रेम अपने पलंग से उठकर सरोज के निकट जा पहुँचा। अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए उसने कहा—"सरोज, तुम्हारे प्रति अपने कर्त्तव्य के पालन में मैं कदापि पीछे नहीं रहूँगा। परन्तु भविष्य के हित के लिए वर्तमान कर्त्तव्यों को निभाना भी तो आवश्यक है।"

एकाएक सरोज के अधर हिल उठे। कमल-नयन खिल उठे। मुस्कराते हुए उसने कह दिया—"क्या मुझे क्षमा नहीं करोगे ?"

"सरोज, मैंने तो अब तक यही समझा है कि सच्ची क्षमा अपनी आत्मा से मिलती है।"

"तो मैं अपनी आत्मा से ही तो क्षमा मांग रही हूं।"

"तो मैं अपने को क्षमा करता हूँ।"

एक कल-हास उस सरोज-कक्ष में गूँज उठा।

इतने में कमलेश्वरी के पास आ पहुँचा हेम। बोला—

"सरोज नहीं दिखलाई पड़ रही है।"

कमलेश्वरी ने पीढ़ा डाल दिया। अब वर्षा की बूँदें थम गई थीं। हेम पीढ़े पर न बैठकर खड़े-ही-खड़े बोला—"मैंने सुना था कि कल सरोज की तबियत कुछ खराब हो गई थी!"

कमलेश्वरी केतली में बटलोई का गर्म पानी डालती हुई बोली—"तुम बैठो तो सही। तुम्हें मालूम नहीं—प्रेम आया है। मैं जरा चाय-वाय बना लूँ।"

यह सुनकर हेम पुलकित हो उठा। बोला "अच्छा, प्रेम आया है! गुड! मगर है कहां?"

कमलेश्वरी हँसते-हँसते बोली—"ऊपर है।"

इतने में सुरेश आ पहुँचा।

कमलेश्वरी बोली—"लो चाय बन गई। चाय लेकर तुम दोनों ऊपर चलो।"

दोनों जब सरोज के कक्ष द्वार पर पड़े हुए पर्दे के निकट पहुँचे तो सरोज कह रही थी "मुझे खेद है कि मेरे कारण आप को इतना उद्विग्न होना पड़ा।'

१० :

जाह्नवी को कभी-कभी इलाहाबाद भी जाना ही पड़ता था। माँ अब नहीं रही थीं, लेकिन भाई और भाभी तो थे ही। कभी कानपुर रहते-रहते जी ऊब जाता, कभी भाभी का पत्र आ जाता—"जीजी, इस बार तो बहुत दिन हो गये। अब आओ न ?"

जाह्नवी का मन तो वहाँ जाने को बहुत होता, क्योंकि एक तो हेम वहाँ पढ़ता था, दूसरे भाभियों के बीच में दस-पाँच दिन जो रहती, तो एक नया संसार पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती। भतीजे छोटे-छोटे थे। उनका आपस में झगड़ना और फिर साथ बैठकर खेलना उसे बहुत प्यारा लगता था। लेकिन क्षेम कानपुर में पढ़ने लगा था। इसके अलावा जाने-आने में व्यय भी होता था। विद्यालय की नौकरी छूट गई थी। उषा, शकुन्तला आदि दो-चार लड़कियां आ जाती थीं। उन्हीं से सौ रुपये के लगभग मासिक आय हो जाती थी। कुछ सिलाई भी वह कर लेती थी। इस प्रकार निर्वाह भर ही हो रहा था।

एक दिन इलाहाबाद से भाभी का पत्र आ गया—"जीजी, राकेश का मुंडन है। ऐसे अवसर पर तुम्हारा आना बहुत जरूरी है।" इसी पत्र में नीचे हेम ने लिख दिया था—"अम्मा, अब सर्दी पड़ने लगी है। हमारे जाड़े के कपड़े संग लेती आना।"

यह पत्र एक पुस्तक में रखकर आया था और पुस्तक अंग्रेजी थी। उसका विषय था—'बच्चे अपराध क्यों करते हैं ?' पुस्तक ने शकुन्तला के लिये भेजी थी।

उस दिन शनिवार था। अभी दिन के चार बजे थे। जाह्नवी ने निश्चय कर लिया कि उसे इलाहाबाद जाना है। क्षेम अभी स्कूल से आया नहीं था और शकुन्तला जा चुकी थी। यकायक उसके मन में आया—"क्षेम पूछेगा—'अम्मा, शकुन्तला के लिये मैंने एक पुस्तक भेजी थी। पुस्तक पाकर कुछ कहती थी ?' ऐसे समय में उसे क्या उत्तर दूँगी ?" अतः उसने सोचा ऐसी स्थिति में मैं आज इलाहाबाद नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त जो लड़कियाँ पढ़ने के लिये उसके पास आती थीं, उनको इस बात की सूचना भी देनी थी कि मैं दो-चार दिन के लिए बाहर जा रही हूँ।

'अब क्षेम आने ही वाला है।' जाह्नवी की आँखें बारम्बार द्वार की ओर उठ जाती थीं।

इतने में सहसा किवाड़ की कुण्डी खटकी। जाह्नवी ने पूछा—"कौन ?"

एक प्रौढ़ पुरुष कण्ठ ने उत्तर दिया—"मैं हूँ परमेश्वरीलाल।"

एक बार जाह्नवी के मन में आया - 'इस समय और कोई घर में नहीं है। क्या उत्तर दूँ ?' जब और कुछ न सूझा तब उसने द्वार की ओट में आकर उत्तर दिया—' भाई साहब, इस समय थोड़ी असुविधा है मुझे। बच्चे घर में नहीं हैं और मैं भी खाना बनाने जा रही हूँ। आपको कष्ट तो होगा—फिर किसी समय आने की कृपा करें।"

परमेश्वरीबाबू ने उत्तर दिया - "मैं क्षेम को लेकर आया हूँ। कई लड़कों के साथ वह पैदल आ रहा था। भीड़ बहुत थी। सड़क पार करना तो बहुत ही कठिन था। मैं अपने कालेज से लौट रहा था। मैंने देखा कि क्षेम रिक्शे और साइकिल के बीच में आ गया था। कोई खास चोट तो नहीं आयी है। बायें हाथ में अलबत्ता थोड़ी खरोंच आ गयी है और घुटना फूट गया है। थोड़ा रक्त भी गिरा है।"

ह्नवी एक दम से घबरा गई। झट उसने किवाड़ खोल दिये।
मने आ गया।

ाह्नवी ने देखा, सचमुच गांठ फूट गई है। उसकी धुक-धुकी तीव्र
ठी। बोली—"और तो कहीं चोट नहीं आई ?"

क्षेम ने उत्तर दिया—"आज तो नहीं आयी, पर इसी प्रकार आ
ती है। आज भी तुम्हारे प्यार ने बचा लिया है। नहीं तो चोट
ने में कोई कसर थोड़े ही रह गई थी अम्मा !"

"तुम अपने साथ के लड़कों से अलग हो गये होगे ? या हो सकता
इधर-उधर देखने लगे हो।"

"नहीं अम्मा, हम कई लड़के साथ ही थे। सड़क के इस पार से
उस पार हो रहे थे। हमारे सामने रिक्शे वाला था और पीछे साइकिल
वाला। अकस्मात् हम बीच में फँस गये।"

परमेश्वरी बाबू अब तक चुपचाप खड़े थे। जाह्नवी बोली—
"चलिये भाई साहब, भीतर बैठिये।" फिर मूल विषय पर आकर
बोली—"जब भी कभी ध्यान इधर-उधर हो जायगा, पहले से ही संकट
की कल्पना करके सावधान न होगे, तो संकटों से अवश्य घिर जाओगे।"
फिर परमेश्वरीबाबू की ओर देखती हुई जाह्नवी कुछ लज्जित हो
उठी। अभी थोड़ी देर पहले उसने द्वार खोलने में भी असुविधा प्रकट
की थी। क्योंकि परमेश्वरी को वह अन्दर नहीं बुलाना चाहती थी।

फिर झटपट वह अन्दर जा कर मरहम उठा लाई।

इतने में परमेश्वरी बाबू बोले—"मुझे अब आज्ञा दीजिये ? मैं भी
अभी कालेज से आ रहा हूँ। क्षेम को इस दशा में देखा, तो जी न
माना। सोचा— भेज ही आऊँ।"

"तो क्या हुआ ? खतरे की घड़ी से छुड़ाकर आप क्षेम को अ

साथ लिवा लाये हैं। और अब दो चार मिनट बैठेंगे भी नहीं ? यों बिना किसी कार्य के तो आप कभी आते नहीं।"

परमेश्वरी ने उत्तर में यह नहीं कहा कि अभी तो आपको किवाड़ खोलने में ही असुविधा हो रही थी, अब अन्दर बैठालने में भी आपत्ति नहीं है।

परमेश्वरीलाल जानते थे कि वह आजकल घर पर ही कई लड़कियों को पढ़ाती और कपड़े सिलाई का काम करती है। महरी को छुड़ा दिया। पहले तीन कमरों में रहती थी अब एकमात्र यही कमरा रह गया है। न पहले जैसी सुविधायें प्राप्त हैं, न जीवन-यापन में कोई उत्साह रह गया है। किसी तरह जीना है, इसलिए जी रही है। परमेश्वरीलाल सोचने लगे—'और तो सब ठीक है किन्तु इस नारी में दु:ख-सहन की अद्भुत शक्ति है।'

फिर बिना बोले न रह सके। उन्होंने कहा—"जैसी स्थिति में मैं इधर आपको देख रहा हूँ, नहीं कह सकता क्यों वह मुझसे सहन नहीं हो रही। हृदय चीर कर तो मैं कुछ दिखला नहीं सकता। लेकिन इतना कह सकता हूँ कि अगर आप मुझ पर विश्वास कर सकतीं तो मैं आपको यह कष्ट कदापि न होने देता।"

जाह्नवी क्षेम की गाँठ पर मरहम लगाकर उस पर पट्टी बाँध रही थी। पट्टी में गाँठ लगाती-लगाती वह परमेश्वरी बाबू को लक्ष्य करती हुई बोली—"आपको बुरा तो न मानना चाहिए, भाई साहब। क्योंकि मेरी स्थितियों से आप परिचित हैं। जितनी कृपा आपकी मेरे ऊपर रहती है यही बहुत है। यद्यपि इसका कोई प्रतिदान मेरे पास नहीं है।"

कथन के बाद जाह्नवी साबुन से हाथ धोने लगी। क्षेम लोटा

कर स्नानागार की ओर चल दिया।

परमेश्वरीलाल अब भी खड़े थे जाह्नवी बोली—"मगर आप खड़े ाँ हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। बैठ जाइये।"

परमेश्वरीलाल कुर्सी पर बैठते हुए बोले—"यही आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं। मैंने एक तो कुछ आपके लिए किया नहीं; यद्यपि कर इसलिए नहीं पाया कि आप सदा ऐसे प्रसंगों में अरुचि और अस्वीकृति की ही भावना व्यक्त करती रही हैं। नहीं कह सकता कि यह व्यवहार मेरे ही साथ है, अथवा सारे समाज के साथ। मैं तो अपनी बात जानता हूं। मुझे सदा ऐसा भान होता रहा है कि किसी का भी सहयोग आपने कभी स्वीकार नहीं किया। थोड़े से भी आदान को आपने अतिशय अनुरोध के साथ अंगीकार किया है। और यह तो आप मानेंगी कि एक ही ओर का अनुरोध स्थायी सम्बन्ध की दूरी को समेटने में बहुधा कम सहायक होता है।"

जाह्नवी हँस पड़ी। तौलिये से हाथ सुखाकर जलते स्टोव पर केतली चढ़ाते हुए उसने कहा—

"भाई साहब, यह बात कहकर आपने मुझे द्विविधा में डाल दिया है। प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति किसी की इतनी सहायता करे ही क्यों है?"

"केवल एक सक्रिय मानवता की भावना से। लोभ से विरत मोह से परे—मनुष्य की एक ऐसी स्थिति भी तो होती है, जब किसी के लिए कुछ करना ही चाहता है।"

"पर अगर आप बुरा न मानें तो मैं कहना चाहूँगी कि अ युग में मैं सक्रिय मानवता की नैतिकता पर विश्वास नहीं क मैंने स्वयं अपने जीवन में अनुभव किया है कि लोग उपकार क

इसलिए नहीं कि उपकार किये बिना उनकी रोटी हजम नहीं होती। वरन् इसलिए कि हर उपकार के पीछे वह मन-ही-मन एक प्रतिदान की आशा रखते हैं। और क्षमा कीजियेगा, जो व्यक्ति उपकार का नाम लेकर किसी प्रतिदान की आशा से पीछे दौड़ता है, वह उपकार का पेशा करता है, उसकी कमाई खाता है !"

परमेश्वरीलाल की आँखें खुल गईं। वे एकदम तिलमिला उठे और बोले—"यहाँ पर आप मेरे साथ और भी अधिक अन्याय कर रही हैं।"

केतली का गर्म पानी अब उबलने लगा था। ढक्कन की रन्ध्रियों से भाप का ऊपर उठता हुआ धुआँ स्पष्ट प्रतीत होता था।

परमेश्वरी बाबू की बात सुनकर जाह्नवी ने तुरन्त पीछे मुड़कर कोने में रखा हुआ एक ट्रंक खोला और कई कागजों के बीच पन्नों पर पन्ने उलटते-उलटते अपने पिता के नाम आया हुआ, लगभग बीस वर्ष पूर्व लिखित, एक पत्र निकालकर परमेश्वरी बाबू के सामने रखते हुए कह दिया—"पिछली बार जब मैं इलाहाबाद गयी थी, तभी पुराने कागजों के बीच सहसा यह पत्र मेरे हाथ पड़ गया।"

सर्वथा जर्जर हो रहे इस पत्र में कुछ शब्द लाल पेंसिल से रेखांकित कर दिये गये थे।···· लिखा हुआ था "लड़के का नाम है परमेश्वरीलाल। पढ़ा-लिखा, सुन्दर और सुशील। विवाह सुविधा से तै हो जाएगा। मैंने ज्ञानेश्वरीप्रसाद से चर्चा की थी। उनका कहना है कि दस हजार में वे इसको स्वीकार कर लेंगे।"

यह पत्र जाह्नवी के पिता के एक मित्र सुन्दरलाल के हाथ का लिखा हुआ था। इस पत्र को पढ़कर परमेश्वरीलाल का चेहरा सफेद

पड़ गया। एक भी शब्द उनके मुँह से न निकल सका। सहसा अवाक्, जड़ स्तब्ध होकर, वे कुर्सी से उठे और कमरे से बाहर चल दिये। अभी वे आंगन तक पहुँचे होंगे कि जाह्नवी बोल उठी — 'बैठिये-बैठिये परमेश्वरी बाबू, कम-से-कम चाय तो पीते जाइये !'

किन्तु फिर परमेश्वरीलाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन दग्ध होकर वे लौट गए।

: ११ :

क्षेम को लेकर जाह्नवी इलाहाबाद जा पहुँची तो वहाँ हेम के सम्बन्ध में कुछ नयी बातें सुनने और कुछ नये अनुभव प्राप्त करने का भी उसे अवसर मिला। भतीजे के मुण्डन-संस्कार के अवसर पर भाई की ओर से स्वागत-सत्कार और भेंट-उपहार में हेम और क्षेम के लिए कपड़े प्राप्त कर वह उत्साहित हो उठी।

चारपाई बिछी हुई थी। बदन को दुलाई से ढके हुए हेम कह रहा था—"अम्मा, मैं अपना यहाँ का खर्चा तो किसी तरह चला ही लेता हूँ। पर सबसे अधिक कठिनाई मेरे सामने यह रहती है कि एक-एक विषय पर पाठ्य विषय-सम्बन्धी दस-दस पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। खरीदने की स्थिति यह है कि हमारे प्रेम और महेश जैसे साथी भी उन्हें खरीद नहीं सकते। पन्द्रह-बीस रुपये से कम की तो कोई पुस्तक ही नहीं है।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"क्या मेरी पढ़ी हुई पुस्तकें अब काम नहीं देतीं ?"

हेम बोला—"अम्मा, सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ युग भी तो सदा आगे बढ़ता रहता है। सगे भाई-बहन की तरह दोनों आपस में संघर्ष किया करते हैं। जैसे सभ्यता के रूपों में विकास हुआ है, काल के चरण आगे बढ़े हैं, वैसे ही युग की प्रवृत्तियों के मान और वस्तु-स्थितियों के मूल्यांकन भी बदले हैं। जीवन को सतत उन्नतिशील बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रयोग जो नित्य होते रहते हैं उनकी

आलोचना के प्रकार और दृष्टिकोण भी बदले हैं। और यह तो तुम जानती ही हो कि जो नैतिकता हमारे प्रकृत विकास को अपनाने, उसके परिपालन और परिपोषण में सहायक नहीं होती—मनुष्य की बुद्धि उसे उच्छिष्ट मान लेती है।"

जाह्नवी ने अनुभव किया कि हेम का बौद्धिक स्तर निस्संदेह ऊँचा उठ रहा है। उसने यह भी अनुभव किया कि यह विकास-चेतना उसने कहीं से उधार नहीं ली। वरन् शृंखलाबद्ध विवश जीवन के प्राणांतक विस्फूर्जन और क्रांतिमुखी आत्मनिष्ठा से ही ग्रहण की है। तब वह पुलकित होकर बोली—"तुम्हारी पुस्तक प्राप्त कर शकुन्तला ने भी यही बात कही थी।"

कथन के बाद जाह्नवी ने हेम के मुख पर दृष्टि डाली तो वह क्या देखती है कि वह हर्ष और उत्साह से विह्वल हो उठा है।

हेम ने पूछा—"और क्या कह रही थी, अम्मा ?"

"कह रही थी दद्दा इलाहाबाद जाकर भी मुझे भूले नहीं। बिल्कुल मेरी रुचि के अनुकूल पुस्तक भेजी है। अच्छा दीदी, वे कब तक आयेंगे ?"

इस बार हेम ने कोई प्रश्न नहीं किया। जाह्नवी ने देखा कि वह विचार में पड़ गया है। तभी कुर्सी से उठ कर वह खड़ी होती हुई बोल उठी—"मैं तो यहाँ आ कर बड़े फेर में पड़ गयी हूँ, हेम।"

हेम ने पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"यह तो तुम जानते ही हो कि मानवता कभी निष्क्रिय नहीं होती। इसलिए कोई आदान-प्रदान, भेंट और उपहार निष्फल नहीं जाता। मनुष्य अगर किसी के लिए कुछ करता है तो उसका प्रतिदान अवश्यम्भावी हो जाता है। मैंने सेविंग्स बैंक से

सिर्फ बीस रुपये निकाले थे और यहाँ भाभी ने तुम्हारे और क्षेम के लिए कितना खर्च कर डाला है ! मैं सोचती थी कि अगर कुछ रुपये मेरे पास और होते तो यहाँ इस अवसर पर मैं एक दिन गीत-मांगल्य ही करा डालती ।"

हेम मुस्कराने लगा—"वाह अम्मा, यह तो तुमने बड़ी अच्छी बात सोची !" और इतना कहकर उसने चारपाई से उठकर अपनी गरम सदरी उठाई और पर्स निकालकर जाह्नवी के सामने रख दिया ।

—"ले लो न ?"

जाह्नवी हँसने लगी । बोली--"अच्छा, अब तो तेरे पास कुछ पैसे भी रहने लगे है !"

पर्स उठाकर उसने देखा कि सौ रुपये के एक नोट के साथ फुटकर दो रुपये और दस पैसे हैं । बोली—"कहाँ से पा गया यह हरा-हरा नोट ?"

हेम हँसने लगा । जाह्नवी बोल उठी—"बता-बता कहाँ से मार लिया ?"

इसी समय उसकी भाभी आ पहुँची और उनके साथ क्षेम भी ।

जाह्नवी भाभी को लक्ष्य करके बोली—"भाभी, देखती हूँ तुम्हारे पास रहते-रहते हेम चोरी सीख गया है ।"

भाभी पढ़ी-लिखी थीं । जानती थी कि जाह्नवी की हर बात के अन्तर में एक भेद होता है । अतः विस्मय के साथ बोल उठीं—"ऐसा मत कहो जीजी । हेम कभी ऐसा नहीं कर सकता । रही मेरी बात, सो तुम चाहे जो कहती रहो, मैं कभी बुरा नहीं मानूँगी ।"

भाभी की बात सुनकर जाह्नवी गम्भीर होकर बोली—"मैं तो

हँसी कर रही थी। यद्यपि उसका भी एक आधार था। तुम अक्सर भैया की जेब टटोला करती थीं न? बस इतनी-सी बात थी।" भाभी ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"टटोला ही तो करती थी! सो भी यह जानने के लिए कि आज कितनी आमदनी हुई। ···खैर······छोड़ो इस बात को। जीजी, आज एकादशी है। वैसे भी तुम बिना स्नान-पूजन किए कुछ नहीं खाती हो। गरम पानी तैयार ही है, मेरे ख्याल से स्नान कर लेतीं, तो मैं तुम्हारे लिए कुछ फलाहार बनाकर निश्चित हो जाती।"

जाह्नवी ने सौ रुपये का नोट उसके सामने करते हुए कहा—"भाभी, पहले इसको भुना दो। फुटकर रुपये अब मेरे पास रह नहीं गये।"

"क्यों, यहाँ तुमको रुपए की ऐसी क्या जरूरत पड़ गयी?"

"वाह! जरूरत क्यों न पड़ेगी? मैं चाहती हूँ कि आज मेरी ओर से गीत-मांगल्य हो जाय।"

"क्यों, कल जो कुछ होना था हो तो गया?"

"अभी कैसे हो गया है? आज मेरी ओर से होगा। जिस-जिसको बुलाना हो, व्यवस्था कर दो। और पाँच रुपये के नुक्ती के लड्डू मँगवा लो।"

"नहीं, मैं तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहती।"

"कुछ कष्ट मनुष्य अपने आनन्द के लिए जानबूझ कर मोल लेता है, उसके पीछे एक उल्लास और आनन्द की पृष्ठभूमि होती है। उसे कष्ट नहीं, जीवन-सौख्य का एक प्रतीक मानते हैं।"

"जीजी, तुमसे तो बात करना ही मुश्किल है। तुम्हारे हर उत्तर के पीछे एक नीति-कथन और हर प्रश्न के पीछे एक प्रवचन रहता

है।" इतना कहते हुये—नोट लिए हुये भाभी चली गयीं। तभी क्षेम बोल उठा—"अम्मा, तुम्हें एक बात नहीं मालूम और भैया की तो ऐसी आदत है कि वे अपने मन से कभी कुछ बतलाते नहीं।"

हेम हँस पड़ा और बोला—"इसमें बतलाने की क्या बात है। एक पहेली प्रतियोगिता में अम्मा मुझे डेढ़-सौ रुपये पुरस्कार मिल गए थे। उसी में से यह सौ रुपये बचे हुए हैं।"

इधर यह बातें चल रही थीं कि प्रेम आ पहुँचा। हेम बोल उठा—"अम्मा, यही मेरा वह मित्र है जिसका मैंने रात को तुमसे जिक्र किया था।"

प्रेम ने आगे बढ़ जाह्नवी के चरणों की रज मस्तक से लगा ली। जाह्नवी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"जियो जियो और अमर बनो।"

प्रेम ने कहा—"माता जी मैंने कल ही हेम से सुना था कि आप आई हुई हैं। पर कल मुझे अपने चुनाव के सिलसिले में कुछ हिसाब-किताब करना था। इसलिए फिर मैं आ नहीं सका यद्यपि रात को लेटे-लेटे मैं यही सोचता रहा कि ऐसे समय मुझे अपने इस काम को एक दिन के लिए टाल देना चाहिये था। क्योंकि आपका आशीर्वाद लेने की एक बड़ी कामना मैं अपने हृदय में बहुत दिनों से सजोये हुये था। हेम तो मेरा सगा भाई-सा है। बड़ा भाई। इसका सहारा न मिलता तो मैं इस चुनाव में किसी प्रकार सफल नहीं हो सकता था।"

जाह्नवी बोली—"बैठो-बैठो, चाय पियो। मैं अभी आती हूँ।"

जाह्नवी चली गई। क्षेम ने चाय का प्याला सामने करते हुए कहा—"बातों-बातों में यों भी काफी देर हो गई है। इसलिए कृपा

करके आप पी ही डालिये।" और हेम की ओर उन्मुख होते हुए उसने कहा—"दद्दा, इधर कई दिनों से शकुन्तला की माँ—महालक्ष्मी देवी —अम्मा से मिलने के लिये नित्य आया करती हैं। कभी-कभी तो उनकी मोटर में बैठकर अम्मा उनकी कोठी पर भी जाती हैं। आजकल वे एक विद्यामन्दिर बनवा रही हैं। अगली जुलाई तक वह तैयार हो जायेगा। मैं सोचता हूं कि उनके इस आयोजन में कोई और बात छुपी हुई है।"

हेम प्रसन्नता के साथ बोला—"हो सकता है। मगर अभी इस विषय में किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। एक तुर्की कहावत है—अनुभव उस अमूल्य कंघे के समान है जो किसी-किसी को उस समय मिलता है जब उसके सिर के बाल झड़ जाते हैं। मल्लिका देवी को इस समय ऐसे ही एक कंघे की आवश्यकता थी भी।"

क्षेम ने पुनः कहा—"और भी एक बात हुई है दद्दा। मल्लिका का हठ चल नहीं सका। शाल्मली देवी को भी अन्त में त्यागपत्र देना ही पड़ा।"

"मुझे इस बात को सुनकर दुःख है। हेम को शकुन का स्मरण आ रहा था। तभी जाह्नवी ने आकर कहा—"बेटा प्रेम, मुझे आने में थोड़ी देर हो गई। भाभी कह रही हैं—प्रेम से कह दो, वह आज खाना यहीं खाये।"

फिर वह हेम के निकट जाकर उसे अस्सी रुपये वापस करती हुई बोली—"बीस रुपये मैंने रख लिए हैं। मैं कानपुर पहुँचते ही भेज दूँगी।"

रुपये न लेते हुए हेम ने कह दिया—"अम्मा ये रुपये पुरस्कार के हैं। यों भी मैंने तुम्हारे श्री चरणों पर चढ़ाने के लिए रख छोड़े थे।

संयोग की बात है कि तुमने स्वयं ही ऐसा अवसर दे दिया। इसलिए इन्हें वापस करने की आवश्यकता नहीं है।"

प्रेम को इस पुरस्कार की बात मालूम थी। अतः वह इसी समय बोल उठा -"कदाचित् इसी क्षण के लिए लावेल ने कहा था—हृदय की विशालता ही मनुष्य को महान् बनाती है।"

जान्हवी को हेम के मित्र प्रेम की यह सुसंगति बड़ी प्यारी लग रही थी। आज प्रातःकाल से ही उसे बारम्बार स्वामी का स्मरण आ रहा था। अतः उसने कह दिया—"तुम्हारे बाबू भी अक्सर यही बात कहा करते थे। एक दिन जब मैं भयानक ज्वर से आक्रान्त थी, कभी-कभी अचेत तक हो जाती थी, उसी समय उन्होंने कमरे में चारों ओर दीपक जला दिये। सहसा जब मेरी आँख खुली, तो वे बोल उठे—"इन दीपकों की ओर दृष्टि डालो। ये तुम्हें निरन्तर जागने की प्रेरणा देंगे। कभी मत सोचो कि अंधेरा आने वाला है। ये एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे, दृष्टि की प्रत्येक गति के साथ तुम्हें सतत जागृत मिलेंगे। इनकी बातों का स्नेह कभी चुकने वाला नहीं। ये उस ज्योतिर्मय के प्रतीक हैं, जो सदा जागृत रहता है। तुम्हारी तबियत अभी ठीक हो जायेगी।"

कथन के क्षण एकायक उसकी आँखें भर आयीं। तुरन्त आँसू पोंछते हुए उसने कह दिया—"जब-जब तुम्हारे क्षेम-कुशल जीवन की सफलता के अवसर आते हैं, तब-तब उनकी यह अमर वाणी स्मरण हो आती है।'

—:०:—

: १२ :

कई दिनों से भवानीबाबू की खाँसी बढ़ी हुई थी। कभी-कभी खाँसते-खाँसते रात-की-रात बीत जाती। यहाँ तक कि सोना दुष्कर हो जाता। राधेगोविन्द सी० ओ० डी० में नौकर हो गया था। उसकी दुलहिन घर में थी अवश्य, पर अब उसको अपने बच्चों की ही देख-रेख से अवकाश न मिलता था। सत्यवती का विवाह हो गया था, पर उस समय वह घर में ही थी। वनलता विवाह के योग्य हो गई थी, पर उसके लिए कहीं वर ठीक नहीं हो रहा था। विश्वनाथ अभी पढ़ रहा था।

दुर्गा रात-दिन इसी चिन्ता में रहती कि कहीं से कोई रकम हाथ लगे, तो सोने के झूमर बनवा लूँ। इयरिंग उसके पास अवश्य थे, पर अब सभ्यता इतनी आगे बढ़ गई थी कि इयरिंग पहनना ग्रामीणता समझी जाने लगी थी। विमाता की सन्तानों के साथ यों भी उसका अनुराग न था। फिर अब तो वे सब मिलकर रात-दिन झगड़ते रहते थे। भवानीबाबू कभी-कभी उन्हें समझाने का यत्न करते, पर अब उनका बल इतना घट गया था कि कोई उनकी बात सुनता न था। उन्होंने एक प्रकार से यह समझ लिया था कि अब मुझे अधिक दिनों तक नहीं चलना है। कभी-कभी जब खाँसी का वेग बढ़ जाता, तब कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि अब प्राण आज निकलें, या कल। अधिक की आशा नहीं है।

जब तक जीवन के प्रति आशा रहती है, तभी तक उसका मोह भी रहता है। जब जीवन-नैया मझधार में पड़कर डूबने लगती है, तब निराशावस्था में जीवन भर के सारे पाप-पुण्य स्वप्न बनकर, सामने आ-आकर, अपना-अपना क्रन्दन और हाहारव, नाना उपालम्भों और प्रतिक्रियाओं के रूप में, प्रकट करने लगते हैं। बीती बातों को भूलकर वह न्याय को एक विकारहीन निष्ठा सजोना प्रारम्भ कर देता है।

चारपाई कई दिनों से कसी नहीं गई थी और पैंताने की रस्सी कुछ ढीली पड़ गई थी। बिस्तर की चादर बदली नहीं गई थी और तकिये का आवरण तो इतना चीकट हो गया था कि उसमे दुर्गन्ध फूटने लगी थी। कहीं उनके निकट इधर-उधर दवाइयों के नुस्खे तथा पुड़ियों के कागज पड़े रहते, कहीं दूध के गिलास में मक्खियाँ भिनकती रहतीं। कभी दोपहर हो जाती और नहाने के लिए गरम पानी न मिल पाता, कभी चारपाई के नीचे सफाई न होती। भवानीबाबू पड़े-पड़े बड़बड़ाया करते। कोई उनकी बातों पर ध्यान ही न देता था।

एक दिन दुर्गा ने पास आकर कह दिया—"कुछ सुना तुमने ?"

"क्या ?" भवानीबाबू ने पूछा।

दुर्गा ने उत्तर दिया—"बड़े कह रहे हैं—"हम यहाँ से चले जायेंगे। हमने दूसरी जगह मकान ले लिया है।"

भवानीबाबू वर्षों से इस बात की कल्पना कर रहे थे। जब कभी महीना समाप्त होने लगता, वे यही सोचने लगते—"बड़े ने कुछ कहा नहीं !' अतएव आज जब दुर्गा ने ऐसी सूचना दी, तब उन्हें कोई

वयं नहीं हुआ । एक निःश्वास मात्र लेकर उन्होंने पूछा—"तुमने उत्तर दिया ?"

दुर्गा ने हाथ का कंगन घुमाते हुए कहा—"मैंने तो यही कह या कि अपने बाबू से कहो, मुझसे क्या कहते हो ।"

"तब वह क्या बोला ?"

"यही कहने लगा उनसे कहने का साहस नहीं होता । किस मुख से कहूँ, समझ में नहीं आता ।"

भवानीबाबू की आँखों में आँसू छलछला आये । आर्द्र कण्ठ से बोले—"और कुछ नहीं कहा उसने ?"

"और तो कुछ नहीं कहा ।"

"और तुमने भी नहीं कहा कि फिर हमारा निर्वाह कैसे होगा ?"

"मैं यह बात उससे नहीं कह सकती । उस पर मेरा ऐसा कोई दावा भी नहीं हो सकता ।"

"हूँ, तो यह बात है । मतलब यह है कि तुम स्वयं चाहती हो कि वह अलग हो जाय । न उसके साथ तुम्हारी कोई ममता है न वह के साथ । क्यों ?"

"चाहे जो कह सकते हो । मुझे कोई शिकायत न होगी । मैं इतना ही जानती हूँ कि घर में जब खाने को होगा, मैं भी खा लूँ न होगा, भूखी पड़ी रहूँगी ।"

"और बच्चों के खाने-पीने का क्या प्रवन्ध होगा ?"

"मैं क्या जानूं ? मुझसे क्या पूछते हो ? सत्यवती अलबत्त रही थी कि मैं तो भैया के साथ ही रहूँगी । यह मेरा अधिका

कोई इसके लिए मुझसे कुछ नहीं कह सकता।"

"इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ?"

"मैंने पहले ही कह दिया कि मेरी कोई राय नहीं है।"

"अच्छी बात है। उससे कहना—मुझसे मिल ले। मैं बुरा न मानूंगा।" कहकर भवानीबाबू चुप हो रहे।

सायंकाल हुआ। सभी बच्चे एकत्र होकर अपने-अपने ढंग से चुहल करने लगे। विश्वनाथ भवानी बाबू के पास चुपचाप आ खड़ा हुआ। बिजली की बत्ती जल रही थी और कड़ाई चढ़ाये दुर्गा सरसों का साग छौंक रही थी। सरस्वती मन-ही-मन कुछ गुनगुना रही थी। बड़े का बच्चा अर्जुन बिस्टिक के लिए मचल रहा था। बनलता अर्जुन के लिए स्वेटर बुन रही थी।

भवानीबाबू बोले—"क्या है बिस्सू ?"

विश्वनाथ ने उत्तर दिया—"बड़े भैया आ गये।"

भवानीबाबू बोले—"आया है, अभी हारा-थका होगा। दालान में बैठेगा। फिर निवृत्त होकर खाना खायेगा। ऐसी कोई जल्दी तो है नहीं। तुम्हारा भी तो भाई ही है। चला आयगा तो तुम्हें बुरा न लगेगा ?"

विश्वनाथ यह बात जानता था। उसे स्वयं ही बुरा लग रहा था कि सारे घर में वही एकमात्र ऐसा भाई है, जो सारा खर्चा चला रहा है और वही आज अलग हो रहा है। वह बराबर यही सोच रहा था कि ऐसे समय में अगर प्रेम भैया होते, तो बड़ा अच्छा होता। वह दुर्गा के पास जाकर बोला—"अम्मा, मैंने एक बात सोची है। कहो कहूँ कहो न कहूँ।"

दुर्गा सरसों के साग को करछली से उलटती-पुलटती बोली—"हाँ; ...ल क्या बात है ?"

विश्वनाथ बोला—"कुल एक रुपए का खर्च है। मैं प्रेम भैया को तार दिये देता हूँ। कल सवेरे वे यहीं दिखलाई पड़ेंगे। उनके आ जाने से बड़े भैया की सिट्टी भूल जायगी। और भाभी की नानी अगर न मर जाय, तो मेरा नाम विश्वनाथ नहीं नागनाथ रख देना !"

दुर्गा का चेहरा खिल उठा। मुस्कराती हुई बोली—"चल मेरे साध, मैं रुपया अभी देती हूँ। अभी किसी से कुछ चर्चा न करना, भला।"

महेश को जब से प्रेम के आगे झुकना पड़ा था, तब से उसका मन गिर गया था। मिलता-जुलता वह अवश्य था, पर एक प्रकार का दर्प जो उसके भीतर रहता था, वह अब मर गया था। कहने के लिए बहुतेरी बातें थीं। सन्तोप भी कह कभी-कभी कर ही लेता था, पर विश्वविद्यालय का सारा वातावरण उसे काटता रहता था।

सबसे अधिक चिढ़ उसे प्रेम से ही थी। वह कभी कल्पना भी नहीं करता था कि उसे शारदा और हेम जैसे—कहने को बुद्धिवादी पर वास्तव में धूर्त - लोगों का सहयोग मिल जायगा। कुछ तो ... अपने ऊपर भी क्षोभ होता था—इतना भी वह न समझ सका ... मुझे मात देने के लिए यह शह दी जा रही है।

इधर कुछ नयीं बातें भी उत्पन्न हो गई थीं। शारदा ने उ... दिन खूब खरी खोटी सुना दी। प्रसंग कुछ इस प्रकार उठा कि महेश के मुँह से निकल गया—'घर का भेदी लंका ढाये।'

शारदा उस समय रेस्तोराँ में बैठा खीरकदम उड़ा रहा था ... की बात सुनते ही बोल उठा—"क्या कहा, फिर तो कहना।"

महेश ने उत्तर दिया—"जो कुछ होना था, हो चुका अब कहने से कोई लाभ नहीं।"

शारदा बोल उठा—"हाँ, लाभ तो सचमुच नहीं है। जो आदमी मित्र को एक सुन्दर अवसर मिलने की घड़ियों में अपनी ऐसी विघातक जलन का परिचय देता है, मैं उसे काला नाग समझता हूँ। —मैं पूछता हूँ, ऐसी कौन सी बात थी, जो तुमने सहयोग के बदले असहयोग की नीति का प्रयोग करना उचित समझा? केवल इतनी बात तो थी कि उसने तुमसे पहले से परामर्श नहीं किया था? अच्छा, नहीं किया था परामर्श, तो फिर क्या हुआ? इससे तुम्हारी मर्यादा को कहाँ आघात लगा? क्या इसका यह अभिप्राय नहीं होता कि वो [illegible] तुमसे सलाह लिये बिना कोई काम तुम्हारे भरोसे पर कर [illegible], वह तुम्हारा मित्र हो ही नहीं सकता?"

"बेकार में बड़-बड़ कर रहे हो।" महेश ने मुँह [illegible] दिया—"तुम्हें कुछ मालूम भी है? पर्चे का [illegible] था?"

"पर्चे का वक्तव्य तुमने तब लिखा [illegible] पैरों पर गिरा था। यह भी तुम्हारे [illegible] अन्यथा यह कार्य तो तुम्हें सुने दिन [illegible]"

"लेकिन अन्त में सारी बातों [illegible] साथ मैंने अगर प्रेम का साथ [illegible] हो सकता था।"

विवश हुए, कहो तो उसकी भी बखिया उधेड़ दूँ ? मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अब भी तुम अपने आपको एक सुसभ्य और शिक्षित समझने का पाखण्ड लिए फिरते हो।"

शारदा का इतना कहना था कि महेश चुपचाप बिना कुछ कहे, उठकर चल दिया।

इस घटना का फल उसके कुछ इतने विरोध में चला गया कि धीरे-धीरे सारे विश्वविद्यालय में इसकी चर्चा होने लगी। जो मिलता, वह इन्हीं प्रश्नों का समाधान चाहने लगता।—"मैंने सुना है—प्रेम के साथ कुछ मनोमालिन्य हो गया। बुरी बात है। मैं कभी तुमसे ऐसी आशा नहीं करता था।"—'अरे भई महेश, मैंने एक बात सुनी है। यह तो कोई बात न हुई कि उसने अगर तुम्हें पहले से निमन्त्रण नहीं दिया, तो तुम उसके विवाह के अवसर पर केवल इसलिए सम्मिलित न होगे कि पहले से क्यों नहीं बतलाया! जबकि पाणि-ग्रहण संस्कार के दिन वह स्वयं गाड़ी लेकर तुम्हें लेने चला आया।"—'हलो महेश, हाऊ-डू-यू-डू। जो भी हो, तुम्हें प्रेम के साथ ऐसा व्यवहार करना न चाहिए था।"

नित्य इस प्रकार की बातें सुनते-सुनते महेश थक गया। वह चाहता, तो प्रेम या हेम से मिलकर इस वातावरण को सहज ही शांत कर सकता था। पर ज्यों-ज्यों ये बातें उसके कानों में पड़तीं, त्यों-त्यों वह मन-ही-मन और क्षुब्ध हो उठता।

इस दशा में उसका अध्ययन कैसे पूरा होता ? परिणाम यह हुआ कि अन्त में महेश किसी तरह परीक्षा देकर भाग खड़ा हुआ।

परमेश्वरीलाल को उसकी इस स्थिति का बिल्कुल पता न था। महेश ने उनको कोई सूचना भी न दी। चुपचाप वह अपनी ससुराल

(बरेली) चला गया। उसके बाद एक दिन पता चला, वह नौकर हो गया है। परमेश्वरीलाल सोचते ही रहे, वह अब आता है, अब आता है। पर वह आता-आता अन्त में सीधा बरेली से देहरादून जा पहुँचा। वहां नियोजन-विभाग में उसे नौकरी मिल गयी थी।

परमेश्वरीलाल का तार उसकी मेज पर पड़ा था। पत्नी ने पूछा—"इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बहनोई घर में ठहरा हुआ है। न जाओगे, तो अम्मा बुरा न मानेंगी ?"

महेश ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—"जाने को कहो चला जाऊँ, पर साहब कहेंगे आते देर नहीं हुई, अभी से छुट्टी मांगने लगा। फिर साथ में तुमको भी ले जाना पड़ेगा। खर्च का प्रश्न भी है। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

पत्नी ने उत्तर दिया -"मेरे विचार से तुम्हें जाना चाहिए।"

महेश को बात स्वीकार थी। पर वह प्रेम के सामने जाने से झिझकता था। अतः जाने से कतराता था। उसके मौन को देखकर पत्नी फिर बोल उठी—"जो कुछ निश्चय करना हो, जल्दी करो। तुम्हारे लिए वे रुके तो रहेंगे नहीं।"

महेश ने तार का उत्तर दिया—"खेद है, छुट्टी नहीं मिल रही है। प्रेम को मेरा बहुत-बहुत अभिवादन।"

—:०:—

१३ :

परमेश्वरी को अब कुछ भी अच्छा न लगता था। उसका मन [बु]झ गया था। उसने कभी कल्पना भी न की थी कि जान्हवी उन्हें [ग]लत समझ बैठेगी। वह दिन-रात उन परिस्थितियों पर विचार करता रहता, जिनके कारण जान्हवी ने उसका तिरस्कार किया। वह अपने आपसे पूछने लगता—'क्या वास्तव में उसने मेरा तिरस्कार किया है ?' फिर वह अपने आप से ही लड़ने लगता—"यदि उसके हृदय में मेरे प्रति कोई भावना नहीं है, तो वह मुझसे बोलती ही क्यों है ? स्पष्ट क्यों नहीं कह देती कि आप यहाँ मत आया कीजिये ! मुझसे मिलने की आपको कोई आवश्यकता नहीं !"

परमेश्वरी एकान्त-चिंतन में निरन्तर लीन रहने लगा था। पहले कालेज से लौटने के बाद, बड़े उत्साह के साथ वह कमलेश्वरी से पूछा करता था—'क्या बनाने जा रही हो ?' किन्तु अब घर के अन्दर आने की इच्छा ही न होती थी।

एक दिन सुरेश ने आकर पूछा—"बाबू, अम्मा कहती हैं—चिल्ले बनायें, खाओगे ?"

परमेश्वरी ने विरक्ति के साथ उत्तर दिया—"यह सब मुझसे म[त] पूछा करो। जो मन में आये सो बनाओ।"

इतने में आ पहुँचा तार का जवाब। पढ़कर एक बार ख[...] उठा—'एकदम उल्लू हैं सबके सब। इस महेश को मैं अपना सम[...]

था। और अब इसका मेरे प्रति ऐसा कुटिल व्यवहार है!' फिर वह सोचने लगा—'ऐसा कुछ तो नहीं है कि बहू यहाँ से असंतुष्ट होकर चली गयी हो? कमलेश्वरी ने उसे कभी झिड़क दिया हो—कोई कटु बात कह दी हो!'

वह झट कमलेश्वरी के पास जा पहुँचा। बोला—"तुमसे कभी बहू से कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई? किसी बात को लेकर—किसी भी प्रसंग में?"

कमलेश्वरी बोली—"नहीं तो। वह जब यहाँ से जाने लगी थी, तब उसकी आँखों में आँसू छलछला आये थे। भगवान करे, ऐसी बहू सबको मिले। पर आज यह बात कैसे उठी तुम्हारे मन में?"

परमेश्वरी बोला—"महेश का जवाब आ गया तार से। उसे छुट्टी नहीं मिली। तभी मन में आया—'कहीं बहू का मन तो तुम्हारे किसी व्यवहार से दुःखी नहीं है?"—"खैर मैं सब समझ रहा हूँ।"

फिर उसे ध्यान आ गया—"परीक्षा के दिनों से लेकर वह बाहर ही बाहर रहा। हेम कह रहा था कि वह तीसरी श्रेणी में पास हुआ है। इसने यह बात भी मुझसे छिपायी—हेम कह रहा था—वह दल-बन्दी में पड़कर उससे मनोमालिन्य रखने लगा है। प्रेम को भी उसने धोखा दिया लेकिन तार में लिखा है कि छुट्टी नहीं मिली। जब इसके मन में इतना राग-द्वेष है, तब ऐसा भी तो हो सकता है कि इसने जानबूझ कर छुट्टी माँगी ही न हो। किन्तु है बहुत चतुर। तीसरी श्रेणी में पास होने पर भी न जाने कहाँ से प्रयत्न कर-कराकर नौकरी पा ही गया। लोग तो वर्षों चक्कर काटते हैं; फिर भी नौकरी नहीं लगती। किन्तु फिर बहू को क्या हो गया? अगर उसने ठीक तरह समझाया होता, तो ऐसा होना कभी सम्भव न था। लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है

सने बहुत समझाया हो, फिर भी महेश ने न माना हो। क्योंकि तो वह बचपन से है।'

उसी दिन की बात है। सुरेश अठारह रुपए में एक धोती का जोड़ा आया था। परमेश्वरी ने पूछा—"पर्चा कहाँ है?"

सुरेश अपनी जेब टटोलने लगा। कुछ कागज भी निकाले, देखे। ब पर्चा नहीं मिला, तो कह दिया—"इस वक्त नहीं मिल रहा है। फिर खोजकर दे दूँगा।"

परमेश्वरी को कुछ सन्देह हो उठा। उसने पूछा—"कहाँ से लाए थे?"

सुरेश ने उत्तर दिया—"कैलकटा-क्लॉथ स्टोर से।"

"खैर, पर्चा ढूँढो जाकर। अभी दे जाओ मुझको।"

दो दिन बीत गये। परमेश्वरी ने कई बार टोका। अन्त में सुरेश को स्पष्ट रूप से कह देना पड़ा कि पर्चा कहीं खो गया है।

एक दिन परमेश्वरी संयोग से उस कमरे में जा पहुँचा जिसमें बबूल की लकड़ी के सूखे डण्डे गँजे हुए थे। कागज के कई टुकड़े इस ढंग से फटे पड़े हुए थे जिससे सिद्ध होता था कि वे जान-बूझकर फाड़े गये हैं। उसे कुछ संदेह हुआ। उसने उन्हें सावधानी से इकट्ठा किया। फिर उनको इस क्रम से किसी कागज पर गोंद की सहायता से चिपकाया कि कलकत्ता-क्लॉथ-स्टोर का विधिवत् कैशमेमो बन गया। धोती जोड़े का मूल्य उसमें स्पष्ट रूप से दिया था—सोलह रुपये और विक्रय-कर के आठ आने ऊपर से। अपने घर में ही यह स्थिति देखकर परमेश्वरी के हृदय में आग लग गयी।

सुरेश उस समय कपड़े पहनकर बाहर जा रहा था। एका परमेश्वरी बाबू बोल उठे—"ठहरो!" और कथन के साथ ही

उठे—"पर्चा मिला ?"

सुरेश सकपका गया। सिर नीचा करके धीरे से बोला—"नहीं मिला।"

"तुमको नहीं मिला, लेकिन मुझको मिल गया है। यह देखो, इसको तुम्हीं ने अपने हाथों से फाड़ डाला था। इसके मूल में यह बात थी कि तुम पर्चा दिखाना नहीं चाहते थे। और दिखाना इसलिये नहीं चाहते थे कि तुम्हारे भीतर चोर था। तुमने बताया था कि धोती-जोड़ा अठारह रुपये में मिला है, जबकि वह विक्रय-कर सहित मिला तुम्हें साढ़े सोलह रुपये में। इस छोटे से काम में भी तुमने डेढ़ रुपया मार लिया। तुम चोर ही नहीं, बेईमान भी हो। पैदा होते ही मर गये होते तो बड़ा अच्छा होता ?"

इसी समय कमलेश्वरी बोल उठी—"तो क्या हो गया ? बच्चा तो तुम्हारा ही है। पैसा कहीं दूसरी जगह तो चला नहीं गया ? खुद जो सैकड़ों रुपये इधर-उधर लुटाते रहते हो, जिसका भेद तुमने मुझसे सदा छिपाया है, वह क्या है ? जाओ, अपना काम देखो! छोटी-मोटी बातों को लेकर बच्चों को डांटना उनकी नजरों में स्वयं गिरना है।"

परमेश्वरी के मन पर धक्का तो बहुत लगा, पर उसके पास इस समस्या का एक समाधान भी था। अतएव उसने उसी तीव्रता के साथ उत्तर दिया—"तुम मूर्ख हो। तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि तुम कह क्या रही हो! तुम वृद्धा हो गयीं, केश सफेद हो चले, मगर तुम इतना भी नहीं समझ सकीं कि हम कगार पर खड़े हैं। ऐसे समय बच्चों को जो थोड़ी-बहुत शिक्षा हम देते जायें, वही उनके लिये हमारी सबसे बड़ी देन होगी। जो दोष हमारे या तुम्हारे जीवन में हैं, यह

आवश्यक तो नहीं कि वही दोष हमारी सन्तान में भी बने रहें। लोग शराब पीते हैं, लेकिन बच्चों को उसकी गंध भी नहीं लगने देते। और गंध चाहे पवन के साथ बाहर चली भी जाय, पर अपनी ओर से उनकी ऐसी चेष्टा अवश्य रहती है कि बच्चे हमारी इस दुर्बलता को जान न पायें। हमने देखा है कि प्रत्येक पिता अपनी सन्तान को सदा उन दोषों से बचाने की चेष्टा करता है जिनमें वह स्वयं लिप्त है या रह चुका है।"

परमेश्वरी इसके बाद कहना चाहता था कि इसीलिये हमारी पीढ़ी का सदा यह उद्घोष रहा है कि मैं जो करता हूँ, उसकी ओर मत देखो। देखो उसकी ओर, मैं जो कहता हूँ। परन्तु कमलेश्वरी ने स्वामी को यह कहने का अवसर नहीं दिया। वह बोल उठीं—"ऐसा नहीं हो सकता। बच्चे वही करते हैं जो अपने घर-द्वार, पास-पड़ौस और इष्ट-मित्रों में देखते हैं। वे तभी सुधर सकते हैं जब उनके माता-पिता स्वयं सुधरे हुए बनें और बनकर दिखायें। उस उपदेश का कोई मूल्य नहीं है जो भीतर से खोखला होता है। असर तो कर्म का पड़ता है, अनुभव का पड़ता है—दिखावे का नहीं, उपदेश का भी नहीं।"

पत्नी की बात सुनकर परमेश्वरी हत-प्रभ हो उठा। उसके पास उसका कोई उत्तर न था। यह एक दूसरा आघात था। इसकी इतनी भयानक प्रतिक्रिया हुई कि जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण सदा के लिए बदल गया।

तार पाकर प्रेम चिन्तित हो उठा—'जान पड़ता है कि बाबू किसी संकट में पड़ गये हैं। यह भी हो सकता है कि बिस्सू ने बड़े भैया से कोई कड़ी बात कह दी हो। यद्यपि बिस्सू से मैं ऐसी आशा तो नहीं करता। पिछली बार जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि पैसे के अभाव में उसका पढ़ना कैसे होगा, तब उसकी पढ़ाई का भार मैंने ले

लिया था। उसके बाद फिर आज तक ऐसा कोई विग्रह उत्पन्न नहीं हुआ। पर अब यह क्या बात हो गई?' उसने अपना होलडाल ठीक किया। सेविंग्स बैंक में उसका कुछ हिसाब था। अतएव बैंक खुलते ही उसने पचास रुपये निकाले और तत्काल वह एक रिक्शा लेकर स्टेशन की ओर चल दिया।

रात को जब नौ बज गये और फिर भी राधेगोविन्द भवानीबाबू के पास नहीं आया, तो उन्होंने उसे बुला भेजा।

राधेगोविन्द अपनी पत्नी के पास बैठा हुआ, बच्चों के साथ मन बहला रहा था। इसी समय सत्यवती आकर बोली—"भैया तुमको बाबू याद कर रहे हैं।"

राधेगोविन्द भयानक चिन्ता में पड़ गया—'वही बात कहेंगे जिसकी मुझे आशंका थी। अब?'

उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। कमरे से बाहर निकलकर जब वह पिता की ओर चलने लगा तो उसके पैर काँप रहे थे। लेकिन वही सारी बातें उसके भीतर एक-एक करके उभर रही थीं, जो उसकी पत्नी ने उससे कही थीं।

—'अम्मा के मन में हमारे लिये कहीं जगह नहीं है। न तुम्हारा सुख उनसे देखा जाता है न इन बच्चों का प्यार। मैं जब कभी इनके लिए कोई चीज मँगवाना चाहती हूँ तो सदा उनका यह उत्तर रहता है कि पैसे नहीं हैं। तुम्हें दीख नहीं पड़ता कि ननद कितनी सयानी हो गयी है! अब कैसे उसका ब्याह होगा? किस तरह गृहस्थी चलती है, तुम देखते नहीं और पैसे माँगने के लिए मेरे पास आ खड़ी होती हो।'

—'साड़ी चाहिए, साड़ी चाहिए। मेरे पास चप्पल नहीं है, मेरे पास ब्लाउज नहीं है। मुझे थान चाहिये, दुशाला चाहिए। तुम्हें

चाहिए तो सब कुछ, मगर उसके लिए रकम भी तो होनी चाहिए पास-पल्ले ? बाप से पूरा दहेज तो चुकाते नहीं बना और अब यहाँ आकर मुझे शान दिखाने चली है। शान दिखाओ अपने खसम को, जिसके साथ भाँवरें फिरी हैं। आने दो प्रेम को ! मैं तुम्हारी सारी करतूतें उसके सामने रख दूँगी। अब की वह पास भर हो जाय फिर नौकरी लगते क्या देर लगती है ! मैं खुद तुम्हें अलग कर दूँगी। वह तो एक दिन होना ही है। तुम आज अलग हो जाओ तो भी मैं परवाह न करूँगी।'

भवानीबाबू रजाई ओढ़े तकियों के सहारे बैठे हुए थे। चारपाई के नीचे मिट्टी के खपड़े में कफ पड़ा हुआ था। उसके ऊपर राख डाल दी गई थी। उसके पास ही जूते रखे थे कपड़े के, मैले और फटे। और वहीं दवाई की शीशी पड़ी थी। कार्क कुछ ढीला रह गया था इसलिए दवा का रस धीरे-धीरे स्रवित हो रहा था।

राधेगोविन्द ने पिता के पास आते ही पूछा—"तबियत तो ठीक है न।"

"आओ, बैठो। अरी सत्या, भैया को बैठने के लिए उसके कमरे से एक कुर्सी तो उठा ला बिटिया।"

विश्वनाथ कुछ ओट में खड़ा था। झट से कुर्सी ले आया। भवानी बाबू ने कहा—"बैठो !" फिर वे धीरे-धीरे बोले—"हाँ, तुमने अभी मेरी तबियत का हाल पूछा। यह बड़ा अच्छा हुआ कि अलग रहकर दूसरा घर बसाने से पहले तुमने मुझसे इतना पूछ तो लिया। लेकिन क्या यह बात तुम्हारे पूछने की है ? तुम्हें दिखाई नहीं देता कि मेरी तबियत कैसी है !"

राधेगोविन्द सोच रहा था—'माना कि तबियत ठीक नहीं है और

यह भी माना कि अब तबियत क्या ठीक होगी ! लेकिन फिर मैं इसके लिये क्या करूँ ? जितने दिन जीवन भोग लिया है, क्या वह सब मिलकर यथेष्ठ नहीं हुआ ? कोई कोर-कसर रह गई है ? मेरी समझ में नहीं आता कि जिन्हें मर जाना चाहिए, वे जीवित ही क्यों हैं ?'

पर उसने ऐसा कुछ न कहकर उत्तर दिया—"तुमने मुझे बुलाया था। इसलिए मैं आ गया। तबियत का हाल पूछना भी अगर बुरा लगता है, तो मैं आगे से न पूछूँगा।"

भवानीबाबू सिर हिलाते हुए बोले—"हूं, यही ठीक रहेगा। इसी की मैं तुमसे आशा करता हूँ।" कुछ रुककर वह पुनः बोले—'हाँ, मुझे केवल एक बात कहनी है। जिस अवस्था में मैं तुमको और सत्यवती को तुम्हारे मामा के घर से ले आया था, उसका तुम्हें ज्ञान नहीं है। तुम वह दिन भूल गये, जब चना और बेझर की बासी रोटियाँ नमक के साथ खाया करते थे।"

"मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ। मुझे वे दिन आज भी याद आते हैं। मैं यह भी नहीं भूला हूँ कि यह सब भी तुम्हारी ही देन थी। क्योंकि तुमने मेरी माँ के जीवन-काल में ही दूसरा विवाह कर लिया था।"

"हाँ कर लिया था। उसका भी एक कारण था और वह यह था कि तुम्हारी माँ को मेरी माँ का अनुशासन स्वीकार न था।"

"तो अब इस घर में तुम्हारी बहू को अम्मा का कठोर, अमानवीय और वीभत्स अनुशासन स्वीकार नहीं है। जो सदा से होता आया है उसको आप कैसे रोक सकते हैं ? जो निरन्तर है, उसे आप कैसे मेट सकते हैं ?"

भवानीबाबू बोल उठे—"तो तुम मुझसे बदला ले रहे हो।

म्हारा अभिप्राय शायद यह है कि तुम मेरा अनुकरण कर रहे हो। र यहीं तुम गलती करते हो। यह क्या बात हुई कि अगर हम गलती करें, तो तुम भी करो। आवश्यकता इस बात की है कि मेरी गलतियों से तुम कुछ सीखो।"

"बाबू, तुम्हारी इस बात के आगे मेरा सिर झुका हुआ है। लेकिन प्रभाव तो कर्म का ही पड़ता है, कोरे उपदेश का नहीं।"

भवानीबाबू के पास अब राधेगोविन्द के इस कथन का कोई उत्तर न था। वे विचार में पड़ गये।

राधेगोविन्द उठकर खड़ा हो गया। बोला—"मैंने आज एक ज्योतिषी से पूछा था। अभी दो-चार दिन कोई शुभ मुहूर्त बनता नहीं है। सोमवार का दिन ही एक ऐसा है जो मांगलिक और शुभ है। इस अवसर पर केवल एक बात मैं कहना चाहता हूँ कि सब कुछ होने पर भी आप मेरे पिता हैं। इस बात का ध्यान मुझे रखना चाहिये और मैं रखूँगा।"

इतना कहकर राधेगोविन्द चला गया।

भवानीबाबू की आँखों में आँसू न थे। हृदय में एक हाहकार, एक क्रंदन, एक ज्वाला, एक आँधी। और वे सोच रहे थे—"मैं मरने से पहले ही मर गया हूं। अब इस संसार को मेरी आवश्यकता नहीं रह गयी। मुझे मर जाना चाहिए था!"

———

: १९ :

शोभा बोली—"दीदी, आपने जो कुछ कहा, वह सब मैं पहले से ही जानती थी। मुझे उलाहना केवल इस बात का है कि आप व्यावहारिक नहीं हैं। अपनी यही बात आप क्या मल्लिका देवी से समझा कर नहीं कह सकती थीं?"

"नहीं कह सकती थी शोभारानी। प्रत्येक व्यक्ति किसी समस्या के समाधान में प्रवचन नहीं देता। उसका उत्तर कथन नहीं होता, कर्म होता है। कोई उत्तर कभी समाधान नहीं होता। सच्चा समाधान तो केवल कर्म से ही प्राप्त होता है।"

शोभा मुस्कराने लगी। खुले हुए चेस्टर के तीन बटनों में से एक बटन लगाती हुई वह बोली—"यही आपकी अव्यावहारिकता है। आप केवल आदर्श को लेकर चलती हैं। किन्तु आज के युग में लोग आदर्श की हँसी उड़ाया करते हैं।"

"यह तो अपना-अपना विचार है। मल्लिका देवी से पहले ही संघर्ष में मैं जो विलग हो गई उसके लिये मुझे कोई दुःख नहीं है। और शाल्मली देवी के साथ तो मेरा कोई मत-भेद भी न था। उनको मुझसे कभी कोई शिकायत भी नहीं हुई। हां, एक बात अवश्य है। इतना मैं जानती थी कि शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें रुचि कभी नहीं

...ा । क्योंकि अपने पीछे वे कोई आदर्श नहीं रखतीं । उनको एक दिन छोड़ना ही पड़ता और अन्त में छोड़ना ही पड़ा ।"

सम्भव था यह वार्तालाप अभी और आगे बढ़ता ; किन्तु उसी ...नय आ गये शोभा के स्वामी—पाण्डेयजी । आते ही बोले —"दीदी, ...ापको मेरा सादर नमस्कार । बातें मुझे आपसे बहुत करनी थीं ...आज; लेकिन आज जरा जल्दी है । संक्षेप में इतना कह देना चाहता हूँ कि एक मेरी छोटी बहिन है—उर्मिला । उसे मैं आपको सौंपना चाहता हूँ ।" जाह्नवी विचार में पड़ गयी और शोभा सहसा बोल उठी—"लो देखो, दीदी तो पहले ही विचार में पड़ गयीं ।"

मुस्कराती हुई जाह्नवी ने कहा—"वैसे मैं आपकी कोई आज्ञा टाल तो सकती नहीं, केवल एक विनय कर सकती हूँ कि यों भी काफ़ी लड़कियां घर पर आ जाती हैं । काम चल ही जाता है ।"

पाण्डेयजी हँसने लगे । बोले—"आप समझीं नहीं, दीदी । सौंपने का अर्थ वह नहीं है जो आप समझ रही हैं । मैं तो उसे आपकी सेवा और टहल के लिए सौंपना चाहता हूँ ।"

जाह्नवी फिर विचार में पड़ गयी । फिर सँभलती हुई बोली—"कृपा होते हुए भी यह आपका मेरे साथ अन्याय है । मेरी ऐसी सामर्थ्य कहां, जो मैं ऐसी कल्पना भी कर सकूँ !"

"कोई कृपा भी कभी अन्याय होती है ?"

जाह्नवी पाण्डेय जी की बात को समझ रही थी । वह बड़े ... संकट में थी । बड़े संकोच के साथ उसने कहा—"मुझे मालूम है ... आपकी कृपा से ही हेम पढ़ रहा है । ऐसी दशा में—जैसा मैंने ... ही कह दिया कि अलग होकर तो मैं कहीं जा ही नहीं सकती । ... निर्माण में आपका इतना अधिक हाथ है, भला मैं इस बात क...

पाण्डेयजी एक बार दरवाजे पर खड़े हुए और उन्होंने कह दिया—"मैं अब कोई बात नहीं सुनूँगा।"

इतना कहकर पाण्डेयजी चले गये और शोभा तथा जाह्नवी परस्पर बातें करती रहीं।

प्रेम जब अपने पिता के पास जाने लगा, तब हेम भी उसके साथ था। रिक्शे पर साथ बैठते-बैठते प्रेम बोला—"मुझे तो इस समय अवकाश है नहीं, वरना मैं ही जाता।"

हेम ने पूछा—"कहाँ ?"

प्रेम ने उत्तर दिया—"महेश के पास। मुझे पता चला है कि विद्वेष भावना अब भी उसके मन में बनी हुई है। मैं ससुराल गया था। तुमको मालूम ही है। चाचाजी ने महेश और उसके साथ भाभी को भी तार देकर बुलाया था। मेरी धारणा है कि वह मुझसे झिझकता है। एक अहंकार उसके मन में आया है, जो मुझसे आँख नहीं मिलाने देता।" पर यह काम अकेले मेरे जाने से तो होगा नहीं। इसमें तुमको भी साथ देना होगा। आमने-सामने बातें हो जातीं, तो बड़ी सुविधा के साथ उसकी सारी मनोग्रन्थियाँ खोल दी जातीं।"

प्रेम कुछ सोचता रहा। थोड़ी देर बाद बोला—"इस समस्या के समाधान में एक ऐसी बात हमारे पक्ष में है, जो इसी समय एक अमोघ अस्त्र बन सकती है।"

"वह क्या ?"

"वह है एक शंका। उसने जवाब तो दे दिया था कि छुट्टी नहीं मिली। पर मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि उसने छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र ही नहीं दिया होगा। तुम पहले उसके साहब से मिल लेना। मेरा मतलब है नियोजन अधिकारी से। अगर बतलाने में कुछ आपत्ति करें,

कमरे के भीतर ले जाकर पहले उसने अपने पलंग पर ही उसे
ते हुए कहा—"वैसे खाना तो हम लोग खा चुके हैं, किन्तु अंगीठी
ी बुझायी नहीं गयी है। पहले यह बताओ कि तुम इस वक्त
बे तो होगे ही। इसलिए खाना पहले खाओगे कि चाय-वाय
पयोगे।"

हेम ने उत्तर दिया –"मुझे इस समय खाने की बिल्कुल इच्छा नहीं है।—क्योंकि तुमको सुनकर आश्चर्य होगा, मैं तुम्हारे बॉस के घर से आ रहा हूं।"

महेश विस्मय से अभिभूत होकर बोला –"तो तुम जोशी जी के यहां से आ रहे हो ?"

हेम ने उत्तर दिया—"हां, एक आवश्यक काम के लिए उन्हीं से मिलना था।"

महेश का शंकालु मन और भी संशकित हो उठा—"पता नहीं जोशी जी से इसने क्या-क्या जड़ दिया हो।"

हेम समझ गया कि इसका मन शुद्ध नहीं—"इसने मुझसे यह भी नहीं पूछा कि कौनसा काम था।"

इतने में महेश निकट के कक्ष में चला गया।

पत्नी ने धीरे से पूछा —'हेम है क्या ?"

महेश ने उत्तर दिया—"हाँ, जानती तो हो सब इसकी लीलाएँ

"मैं अभी खाना बनाये देती हूं। तुम तब तक पास बैठकर ब
चीत करो। अच्छा, ऐसा करो कि मैं अभी पहले चाय बनाये
हूं। कुछ बिस्किट और मेवे रक्खे हैं। तुम पहले चाय ही पिला
तुम्हारे इनके सम्बन्ध चाहे जैसे भी रहे हों, मैं इनके स्वागत-

"अब क्या कर सकता हूँ। जो होना था सो हो गया। और कहो, तुम हमारे घर तो गये ही होगे ? बाबू और अम्मा, सम्भव है, अप्रसन्न भी हों। कुछ कहते तो नहीं थे ?"

हेम ने उत्तर दिया—"उनके ऊपर वही प्रतिक्रिया है। चाची तो विष का घूँट पीकर रह गयीं, किन्तु चाचा तुम्हारे इस व्यवहार से बड़े दुःखी हैं। और जब मैं उनसे कहूँगा कि महेश जान-बूझकर नहीं आया है, छुट्टी उसने माँगी ही न थी, तब तो वे और भी दुःखी होंगे। फिर न जाने क्या सोचें और क्या कर डालें। क्योंकि इतना तो तुम मानोगे कि वे तुम्हें चाहते बहुत हैं।"

यह एक ऐसा आघात था कि महेश का हृदय हिल उठा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसकी आँखों में आँसू झलक आये। कुछ कहने ही जा रहा था कि हेम बोल उठा—"तुमको शायद यह मालूम नहीं कि हम सब आज कहाँ आ पहुँचे हैं। जब हमें अपने स्वाधीन राष्ट्र का नव-निर्माण करना है, तब छोटी-छोटी प्रतिक्रियाओं से ग्रस्त होकर हम अपने समाज और देश का, परिवार और व्यक्तित्व का, कैसा अहित करते रहते हैं! विद्यार्थी-जीवन के संघर्ष की प्रतिक्रिया अब तक तुम नहीं भूल सके। आत्म-तुष्टि के लिए बहिन तथा माता-पिता तक को धोखा देते हुए तुम्हें लाज न आयी! – जबकि मुझे यहाँ प्रेम ने ही भेजा है। वह स्वयं यहाँ आने वाला था। पर उसके घर में ऐसा विग्रह उठ खड़ा हुआ है कि उसका वहाँ जाना अनिवार्य था।"

महेश अब सिसकियाँ ले-ले रो उठा। क्रन्दन के स्वरों में उसने कह दिया - 'हेम तुम मुझे क्षमा कर दो। बाबूजी से भी तुम कुछ न कहना। तुम्हें मेरी शपथ है। मैं प्रेम से भी क्षमा माँग लूँगा। जो कुछ मैंने किया, मैं उसका प्रायश्चित करने के लिए तैयार हूँ।"

इसी समय महेश की पत्नी रंजना कमरे के दरवाजे पर आ गई। हेम ने रंजना को प्रणाम किया और महेश से बोला—"बस, अब मुझे तुम से कोई शिकायत नहीं है। रोओ मत भैया, शान्त हो जाओ। भूलें हमसे नित्य होती रहती है। पर विजयी वह होता है, जो भूल स्वीकार कर पावन आत्म-निष्ठा के साथ जीवन-संग्राम में सतत् आगे बढ़ता रहता है।"

फिर उसने रंजना को लक्ष्य करते हुए कहा—"आप चिन्ता न करें भाभी। यह प्रसंग ही कुछ ऐसा था कि हृदय के रुद्ध-द्वार खोलकर एक बार इसे रो लेने की बड़ी आवश्यकता थी। एक रुदन ही तो है, जो अन्तरात्मा का सारा कलुष मिनटों में मिटा देता है।"

रंजना ने उत्तर दिया—"आप ही इन्हें समझा सकते हैं। मैं तो समझाते-समझाते हार गयी। अब तक मैं तुम्हारा नाम ही सुनती रहती थी। आज आंखों के सामने भी देख लिया। धन्य हैं वे माँ, जिन्होंने तुम्हें अपनी कोख मे जन्म देकर वंश का गौरव बढ़ाया।"

नतशिर होकर हेम बोला—"मैंने तो भाभी अभी कुछ किया नहीं। हाँ, कर्म के पावन-पथ पर आ अवश्य गया हूँ। बापू ने एक बार कहा था—आचार-धर्म का सूत्र सोने का होता है, क्योंकि उसके मूल में रहती है—पारस्परिक सहनशीलता। ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि हम सब एक ही भाँति विचार करें। इसलिये व्यक्तिगत जीवन में आचार-धर्म ही एक पाथेय रह जाता है। किन्तु उस आचार को भी हम बलपूर्वक तो किसी पर लाद नहीं सकते। क्योंकि व्यक्ति-मात्र के बुद्धि-स्वातन्त्र्य में यह एक हस्तक्षेप है, अक्षम्य और असह्य।"

हेम की इस बात को ध्यान से सुनकर रंजना अपने कमरे की ओर जाती हुई बोली—"लाला, मैं तुम्हारी ये सब बातें सुनना चाहती हूँ।

पर पहले मैं तुम्हारे लिये थोड़ा-सा खाना बना लूँ ।"

इसी समय द्वार की कुण्डी खटकने लगी । महेश तब तक शान्त हो चुका था । झट वही द्वार की ओर बढ़ गया ।

तारवाले ने एक लिफाफा महेश के आगे बढ़ा दिया ।

हस्ताक्षर करने के बाद महेश ने जो तार खोला तो पढ़ते-पढ़ते उसने मत्था थाम लिया ।

प्रेम ने इस तार में लिखा था—'क्षमा !'

। १५ ।

होली का दिन था और आहूमी हेम के साथ सरसैया घाट पर एक पीपल के वृक्ष के निकट खड़ी थी। स्नानार्थी-वृन्द सीढ़ियों से नीचे-ऊपर चढ़-उतर रहा था भाँति-भाँति के स्नानार्थी। कोई अपनी माँ के साथ आया था, कोई पत्नी के साथ। किसी किसी के साथ बहुएँ और बच्चे भी थे। कुछ बच्चे माताओं की गोद में थे, कुछ उनके निकट खड़े थे। हेम ने देखा एक बच्चा एक बुढ़िया की पीठ पर बैठा हुआ कह रहा है—'अब मुझे उतार दो नानी। बस नहीं, इसी सीढ़ी पर।'

बुढ़िया के केश सन जैसे श्वेत थे, बदन में झुर्रियाँ थीं। साड़ी वह जो पहने हुए थी, उससे प्रतीत होता था, किसी धनी घर की लड़की है। उसके पैरों में एक-एक बिछुआ था और सिर के मध्य में जो माँग थी, उसमें भरी हुई सिन्दूर की रेखा यद्यपि फीकी हो चली थी, फिर भी उसकी लालिमा स्पष्ट जान पड़ती थी।

बच्चा उसकी पीठ पर से उतर रहा था।

हेम ने हँसते-हँसते पूछा—"आभा, यह बच्चा अपने पैरों से चल सकता था, फिर भी बिना स बचपन यह जो अपनी नानी की पीठ पर चढ़ कर जाता है, इसमें उस नानी के प्यार का अधिकांश हाथ है, अथवा उसके भी स्वाभाविक वृत्ति का ?"

जाह्नवी को हेम का यह प्रश्न बहुत प्रिय प्रतीत हुआ। वह मुस्कराती हुई बोली—"बेटा, माँ हो या दादी, पिता हो या पितामह, नयी पौध पर अत्यधिक ममता होना स्वाभाविक है।" महाजनों की इस प्रवृत्ति का ज्ञान तो तुम्हें होगा ही कि मूल की अपेक्षा ब्याज ही उन्हें अधिक प्यारा होता है- उसकी उन्हें अधिक चिन्ता रहती है। सदा से वे यह विश्वास रखते चले आये हैं कि ब्याज अगर विधिवत् मिलता रहे तो मूल कहाँ जाता है!

हेम हँसने लगा। पर फिर तत्काल कुछ सोचकर उसने कह दिया - "तात्पर्य यह कि पुत्र की स्थिति मूलधन के समान है।"

जाह्नवी का उत्तर था—"है ही।"

हेम आगे-आगे सीढ़ियाँ उतरता हुआ बोला- "पर अम्माँ, इस प्रसंग में अभी एक बात छुटी जा रही है।"

जाह्नवी ने पूछा—"कौन सी?"

हेम ने कह दिया—"इस प्रकार पुत्र जब मूलधन होता है तब पुत्र-वधू को तुम क्या कहोगी?"

इस बार जाह्नवी अधिक विचार में पड़ गयी। तत्काल उसकी समझ में न आया कि क्या उत्तर दूँ। फिर भी उसने सोचा, कुछ-न-कुछ तो कहना ही चाहिए। तब वह बोली "मुझे ऐसा लगता है हेम कि महाजनी प्रथा के अनुसार वार्षिक रूप से यदि ब्याज नहीं मिलता, तो वह मूलधन में मिलकर मिश्रधन बन जाता है; और फिर आगामी ब्याज पुनः मिश्रधन पर चलता है, मूलधन पर नहीं। इस प्रकार के ब्याज को हम चक्रवृद्धि ब्याज कहते है जिसका महत्व ब्याज की अपेक्षा कहीं अधिक होता है।"

"तो तुम कहना चाहती हो कि पुत्र-वधू मिश्रवन हो सकती है ?" जाह्नवी हँस पड़ी ।

अब दोनों गंगा के निकट जा पहुँचे । धारा की ओर इंगित कर हेम ने कह दिया—"अम्मा देखो, यहाँ मैं अपने सामने दो माताओं को देख रहा हूँ । एक यह है—अनन्तसलिला जाह्नवी और दूसरी तुम हो—प्राणदायिनी । मेरे लिए दोनों समान हैं । एक पाप नाशिनी है, दूसरी भय नाशिनी ।"

जाह्नवी विचार में पड़ गई । हेम फिर बोल उठा —"अम्मा, पहले मैं नहा लूँ फिर तुम नहा लेना ।"

हेम आगे बढ़कर स्नान करने लगा । जिस सीढ़ी पर वह खड़ा था, वहाँ गहराई का स्तर कमर तक ही पहुँच पाता था । वह एक सीढ़ी और नीचे उतरने लगा ।

जाह्नवी ने कहा —"बस, अब और आगे मत बढ़ो । यहीं नहा लो ।"

अभी थोड़ा-बहुत जाड़ा पड़ रहा था । इसलिए हेम अधिक देर न लगाकर दो मिनट के अन्दर वापस आ गया । जाह्नवी ने तौलिया उसके आगे कर दिया । हेम अभी देह पोंछ ही रहा था कि जाह्नवी भी स्नान के लिए चल दी । हेम सोचने लगा —'क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ।' फिर धोती पहनता-पहनता इस चिन्ता में पड़ गया कि अम्मा से कैसे कहा जाय ! सरोज की बात दूसरी थी । प्रेम के साथ न तो मैं ईर्ष्या कर सकता था, न विश्वासघात । जानबूझ कर मैंने सरोज से कह दिया कि मैंने तुमको प्राप्त करने की कभी आकांक्षा नहीं की । तुमको सदा भ्रम होता रहा । अब इस भ्रम को और अधिक पनपने देना मेरे लिए सम्भव नहीं है । मानता हूँ कि

आंधियाँ आती रही हैं। किन्तु फिर तुरन्त पानी बरस गया है। अच्छी तरह नहीं बरसा, तो बूँदा-बूँदी तो हो ही गयी है। फिर आयी यह शकुन्तला। मैंने ऐसा कभी सोचा न था। मैं उसकी कभी कल्पना भी न कर सकता था। एक दिन ऐसा भी आ गया कि बिना सोचे-समझे मैं उसे पुस्तकें भेंट करने लगा। महालक्ष्मी देवी मेरे परोक्ष में आने-जाने लगीं। उनके पास सम्पदा की कमी नहीं। और अम्मा को तो वे अपनी बहन की तरह मानती हैं। कितना अवलम्ब उनसे मिला है! शकुन्तला मेरे इलाहाबाद से लौटने पर प्रायः झगड़ने लगी—'इतने दिन बाद आये हो और हमारे लिए कुछ नहीं लाये? मूर्खराज कहीं के!' हेम मन-ही-मन हँसने लगा—अम्मा ने भी एक बार देख लिया था, उसे मेरे प्रति इस उपालम्भ के साथ। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि उसी समय उन्हें कोई सन्देह क्यों नहीं हुआ? उसके बाद एक और नयी बला उन्होंने पाल ली है। आज पाण्डेयजी ने मुझे बुलाया है। सबसे बड़ी विपदा यह है कि घर से जब मैं कहीं चलने लगता हूँ तो किसी-न-किसी कार्य के बहाने उर्मिला मेरे साथ चल देती है। अब प्रश्न यही उठता है कि क्या यह सब बातें मुँह से कहने की हैं?'

हेम कपड़े पहन चुका था। बालों में कंघी कर रहा था कि सहसा ध्यान हो आया—'अम्मा नहा चुकी होंगी। नीचे सीढ़ियों की ओर जो दृष्टि डाली, तो देखता क्या है कि वे धोती बदल चुकी हैं और अपनी ही नहीं, मेरी भी धोती उठा ले गई हैं।

तब वह आघात से अभिभूत हो उठा। तत्काल सीढ़ियाँ उतरकर हाथ बढ़ाते हुए उसने माँ के हाथ से धोती छीन ली। फिर वह बोला—"एक क्षण की भी चूक आदमी का सारा गौरव नष्ट कर देती है।"

जाह्नवी ने धोती तो छोड़ दी, किन्तु तत्काल वह पूछ बैठी—"चूक की इसमें क्या बात है, बेटा ?"

"बात कैसे नहीं है ? तुम मेरी धोती छांटोगी और मैं देखता रहूँगा !"

जाह्नवी बोली—"तो क्या हुआ ? मेरे लिए तो तू सदा बच्चा ही रहेगा। जब तक शरीर में शक्ति रहेगी, तब तक तेरे सौख्य का ध्यान मेरे प्यार का अधिकार बना रहेगा।"

हेम थोड़ी देर तो विचार में पड़ा रहा, फिर सीढ़ियाँ चढ़ कर बोला—"मैं पाण्डेयजी के पास जा तो रहा हूँ अम्मा, किन्तु मुझे भय है कि उर्मिला भी मेरे साथ लग जायगी। मैंने प्रायः देखा है कि उसका ध्यान अध्ययन में उतना नहीं लगता, जितना मेरे साथ घूमने-फिरने और विवाद करने में।"

जाह्नवी बोली—"तुम चिन्ता मत करो हेम, सब ठीक हो जायगा।"

हेम कुछ गम्भीर होकर बोला—"क्या ठीक हो जायगा ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि हम एक जाल में फँस गये हैं। उद्धार का कोई मार्ग मुझे दिखलाई नहीं पड़ता।"

यह बातें अभी चल ही रही थीं कि पश्चिम की ओर से परमेश्वरी बाबू सामने आ पहुँचे। हेम ने घड़ी देखी, तो झट उसने कह दिया—"लो, नौ बज गये ! मैं तो अब यहाँ से सीधे पाण्डेयजी के यहाँ जा रहा हूँ। मामाजी भी आ गये।" और कथन के साथ परमेश्वरी बाबू की ओर उन्मुख होकर बोला—"मामाजी को मेरा सादर नमस्कार। कहिये, अब तो आप प्रिंसिपल हो गये हैं अपने कालेज में। और सुना है वेतन भी आपका अब पाँच सौ से ऊपर हो गया है। अब तो आप को गाड़ी खरीद लेनी चाहिये।"

परमेश्वरी बाबू ने उत्तर दिया—"सुखी रहो बेटा ! जीवन व गाड़ी बीच में बिना रुके आगे बढ़ती जाय, सुरेश भी किसी सिलसि से लग जाय – मैं इसी को अपने लिये सबसे बड़ी गाड़ी समझूँगा ।"

हेम बोला —"क्षमा कीजियेगा, मुझे तो इस समय एक आवश्य काम है । इसलिये मुझको तो अब आज्ञा दीजिए । फिर दर्शन करूँगा मुझे महेश के विषय में भी आपसे कुछ बातें करनी हैं ।"

हेम चलने लगा तो परमेश्वरी बाबू बोले —"प्रेम और तुमने मिल कर सब ठीक कर लिया है । मुझे सब मालूम है । और कल तो एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बहू के साथ वह घर भी आ गया है । तुमको बहुत पूछ रहा था । आना जरूर । सरोज भी आजकल यहीं है ।"

"अच्छा-अच्छा, मैं आऊँगा, मुझे ध्यान रहेगा ।"

जाह्नवी को कुछ समय पहले सरोज और हेम की हार्दिकता का थोड़ा-सा परिचय मिल चुका था । अतएव उसे यह समझने में देर न लगी कि परमेश्वरी बाबू ने इस समय सरोज की उपस्थिति की चर्चा क्यों की । उसने परमेश्वरी बाबू की ओर उन्मुख होकर कह दिया— "भाई साहब, आपकी भावना को मैंने सहसा जो आघात पहुँचा दिया, उसका मुझे दुःख है ।"

"मुझे स्वयं दुःख है, यद्यपि यह प्रकरण अब धूमिल अतीत में समा गया है । आइये, चलें ।"

जाह्नवी आगे बढ़ गई । परमेश्वरी बाबू ने उस प्रसंग के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कह दिया —"मैं जानता था, एक दिन ऐसा आ सकता है कि आप भ्रम में पड़ जायें ।"

जाह्नवी इस प्रसंग में कोई बात करना नहीं चाहती थी । वह तो कभी-कभी यह भी कल्पना करने लगती थी कि अब उनसे कभी भेंट

न होगी। संयोग की बात दूसरी है। जिस तरह आज अकस्मात् भेंट हो गई। धीरे-धीरे सतर्कता के साथ उसने उत्तर दिया—"तुम जिस भ्रम की बात कर रहे हो, वह आज का नहीं, बहुत पुराना है। एक संयोग ही था कि उस दिन अकस्मात् ट्रेन में तुमसे भेंट हो गयी। तुम्हारी सज्जनता ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया था। फिर अन्त में उस आश्चर्य का भी समाधान मिल गया। तुमने इस सूत्र को टूटने नहीं दिया, जब तुम हेम की वर्षगांठ के समय एक उदारता के साथ मेरे यहां आ पहुँचे। न आते तो कभी कोई भ्रम न होता। पर, तुम जिसको भ्रम कहते हो, मैं उसे प्रयोग समझती हूँ।"

इतने में एक तांगा सामने आ गया। परमेश्वरी इस संकोच में था कि कहीं ऐसा न हो कि मैं इसमें बैठने का प्रस्ताव करूँ और सदा की भांति वह उसे अस्वीकार कर दे।

इतने में जाह्नवी ने कह दिया—"आओ बैठो।" और कथन के साथ वह अगले पायदान पर चढ़कर उसरी आग में बैठने लगी।

परमेश्वरी बाबू बोल उठे—"गड़बड़ मत करो। इधर बैठो। वह स्थान मेरे लिये है।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"सदा से तुमको यही भ्रम रहा है। किन्तु मैंने उस दिन इसी भ्रम का निवारण करने के लिये यह पुराना पत्र तुम्हारे सामने रख दिया था।"

फिर उसने तांगे वाले को लक्ष्य करके कहा—"चलो, डिप्टी के पड़ाव के आगे, देवनगर।"

तांगेवाले ने एक चाबुकी घोड़ी की पीठ पर जमा दी। तांगा चल पड़ा।

जाह्नवी ने इस प्रसंग के

जानती थी, तुम बुरा मान जाओगे। और तुम मान भी गये। तुमने यह न सोचा कि भ्रम जैसी चीज को सतत बनाये रखने की अपेक्षा उसका निवारण कर देना ही कल्याणकर होता है। परिणाम यह हुआ कि तुमने मेरे यहाँ आना भी छोड़ दिया। कल घर में क्षेम की वर्ष-गाँठ थी। मुझे तुम्हारा कई बार स्मरण आया।

'आज जब से इस जाह्नवी ने मुँह खोला है तब से उसका व्यवहार मेरे प्रति एक-दम से बदला हुआ जान पड़ता है।' परमेश्वरी बाबू बराबर इसे अनुभव कर रहे थे—पहले यह मुझ से आप कहती थी। यद्यपि नाता भाई साहब का ही कहलाता था। नाता आज भी वही बना हुआ है, किन्तु 'आप' शब्द का स्थान यह जो 'तुम' ने ग्रहण कर लिया है—यह एक विलक्षण बात है।

वे बोल उठे—'मैंने सदा यही देखा और अनुभव किया है कि जीवन की सत्य और कटु अभिव्यंजना में तुम मुझ से कहीं अधिक अग्रसर हो। मैं यह भी जानता हूँ कि निर्माण और विकास के लिए—जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध है—दुःख-भोग और अटूट संयम सबसे बड़ी कसौटी है। किन्तु एक बात अब भी मुझे तुमसे समझनी है। मान लो, मैं किसी भ्रम में रहा हूँ किन्तु यदि कभी कोई भ्रम भी एक अनुरोध बन जाय, भले ही ...

जाह्नवी का इतना कहना था कि परमेश्वरी बाबू [illegible]
उनका चेहरा सफेद पड़ गया। थोड़ी देर बाद जाह्नवी ने देखा कि
परमेश्वरी बाबू रूमाल हाथ में लिए आँसू पोंछ रहे हैं।

इतने में देवनगर का चौराहा आ गया। [illegible]
इसी समय परमेश्वरी बाबू बोल उठे—"[illegible]
मैं वय मे भले ही समान होऊँ, किन्तु ज्ञान में [illegible]
एक अबोध बालक-सा पाता हूँ।"

जाह्नवी हँसने लगी। बोली —"[illegible]
जेब टटोलती हुई पुन कहने लगी—"[illegible]
और इस बातचीत मे नोट भुनाने का [illegible]
इसी बात पर मेरे हिस्से के पैसे भी तुम्हीं दे देना।"

"अब और लज्जित मत करो बहन"—[illegible]
जोड़ दिये।

"इन्टरव्यू हो गया, चाचाजी।" [illegible]
ने कह दिया—"आपके प्रताप से [illegible]
लिया गया। कल मेडिकल भी हो [illegible]।"

पाण्डेयजी बोले—"मुझे बड़ी [illegible]
ठहरकर कहने लगे। "बैठ बेटा, [illegible]
मान है। तुम्हारे नगर में [illegible]
इसमे तो कोई सन्देह नहीं कि [illegible]
तुम हो। मैंने सोचा तो [illegible]
मुझे जो सूचना मिली है [illegible]

"चिन्ता कैसी? मैं [illegible] हुआ।"

"चिन्ता और कोई नहीं, उर्मिला के विवाह की है। मैंने जिस ज्योतिषी को उसकी जन्मपत्री दिखाई है उसने तो एक ऐसी बात बताई है जिससे मैं काँप उठा हूं।"

"वह क्या ? वह क्या बात है, चाचा जी ?"

"खैर उसको जाने दो तुम। मैं तो चाहता था कि वह तुम्हारे साथ रह सकती किन्तु ज्योतिषी के कथन ने सारी स्थिति बदल दी है।"

"तो चाचा जी, फिर मुझे बतला ही दीजिये न ! मैं किसी से कहने थोड़े ही जा रहा हूँ। कुछ भी हो, कैसी भी परिस्थिति हो, मैं आपको चिन्ता में डालने का कारण तो कभी बन नहीं सकता।"

इतने में शोभा आ गई। बोली—"मैं जाह्नवी को लेकर ज्योतिषी के यहाँ गयी थी। उनका कहना है कि इसके मंगल-ग्रह बड़े प्रबल हैं। विवाह अभी दो वर्ष तक तो हो नहीं सकता। उसके बाद भी उसी व्यक्ति से होना चाहिये जो मंगल-मूर्ति हो, जिसका मंगल इससे भी प्रबल हो। ऐसी दशा में हेम के साथ उसका सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं हो सकता। यह ऐसी समस्या है जिसमें कन्या का ही कल्याणपक्ष वर को कल्याणमय बनाता है। अर्थात् उसका सौभाग्य ही वर का सौभाग्य होता है। और जब ग्रह-दशा ऐसी हो कि एक दुर्भाग्य दूसरे के प्राणघात का कारण बने, तब इस प्रकार का सम्बन्ध सर्वथा त्याज्य होता है। हमें दोनों ओर का ध्यान रखना है। इसलिये हमें अपनी सुविधा का ध्यान न रखकर जल्दबाजी में कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो किसी भी पक्ष के लिए प्राणान्तक हानिकर हो।"

शोभा का इतना कहना था कि पाण्डेय जी बोल उठे—"मुझे बहुत दुःख है हेम कि मेरी यह अभिलाषा पूरी न हुई।"

'कोई बात नहीं बाबा जी, भगवान चाहेगा तो आपकी यह उल-झन भी शीघ्र ही दूर हो जायगी। मेरा एक बालबन्धु शारदा है। मुझे मालूम है, वह चोर मंगली है। उसे तैयार कर लेने का दायित्व मैं लेता हूँ।" हेम अभी और भी कुछ कहता, पर उसी समय उर्मिला पुरवसी हुई आ पहुँची और बोली—"श्रीमान् १००८ हेमचन्द्र महोदय आपको फोन पर कोई बुला रहा है।" मैंने काम पूछा, तो उसने उत्तर दिया—"बात उन्हीं से कहने की है।"

हेम ने फोन का रिसीवर जो कान में लगाया, तो महेश बोल उठा—"फौरन तैयार होकर स्टेशन पहुँचो। पार्सल-ट्रेन सेट है, गाड़ी मिल जायगी। मैं भी वहीं मिलूँगा। प्रेम का तार है—बाबा जी का जीवन संकट में है। ऐसे समय हमारा वहाँ जाना अनिवार्य है।"

शोभा के साथ उर्मिला तब तक उसी कमरे में आ गयी थी, जहाँ फोन था। हेम उन्हें नमस्कार करके चला गया।

उसी दिन सायंकाल महेश और हेम, प्रेम के घर जा पहुँचे। पास-पड़ोस के लोग जमा हो गये थे और डाक्टर दास भवानीबाबू की नाड़ी देख रहे थे। ज्वर अभी तक शान्त नहीं हुआ था, पलक मुँदे हुए थे। कभी-कभी होंठ बन्द हो जाते और फिर अन्तस् की मर्मवाणी फूट पड़ती।

प्रेम उनके निकट खड़ा हुआ, कान लगाकर, उनके शब्दों को सुनने और समझने की बराबर चेष्टा कर रहा था, जो ऐसी गम्भीर वेला में भवानी बाबू बुदबुदा उठते थे।

भवानी बाबू के शब्द थे—"तुम्हें बहुत जीना है गोपीगोविन्द। मैं अभी मरूँगा नहीं। तुम्हें तुम्हारी इन प्रतिक्रियाओं को भी देखना है,

नके मूलाधार मेरे कर्म हैं। मुझे प्रेम से बड़ी आशा है। बेटा प्रेम,
रा साबुन तो देना। हाथ धो डालूँ। परम-पिता केवल स्वच्छ हाथों
को देखता है, मैले हाथों को नहीं।"

इतने में डाक्टर साहब ने धीरे से कहा—"मुझे बड़ा आश्चर्य हो
रहा है। इस आयु के किसी भी वृद्ध में, जीवन के प्रति, मैंने ऐसी
अटूट आस्था नहीं देखी। नाड़ी की गति ठीक हो गयी है। बस, अभी
थोड़ी देर में इनकी तबियत ठीक हो जायेगी। आप लोग यह भीड़
हटा दें। अब यह रोना-धोना भी बन्द होना चाहिये। चिन्ता की घड़ी
टल गयी है।"

प्रेम राधेगोविन्द के निकट जाकर कह रहा था—"बड़े भैया,
तुमने बिना सोचे-समझे ऐसा कार्य कर डाला कि बाबू का जीवन संकट
में पड़ गया। तुमको दुनियाँ से शिकायत थी। पर मैंने तो कभी तुमको
दूसरा नहीं समझा। पिछली बार तुमने घड़ी के लिये कहा था—"लो,
सोने की यह घड़ी मुझे टैस्ट-मैच से, पुरस्कार रूप में, मिली थी। अ
इसे तुम्हीं अपने पास रक्खो।" इस कथन के साथ उसने अपने हा
की घड़ी राधेगोविन्द को दे दी।

राधेगोविन्द की आँखों में आँसू छलछला आये। बोला—'
प्रेम, एक तुम्हीं इस घर में ऐसे हो, जिसको सामने पाकर मेरा
बन्द हो जाता है। इस बार बाबू अच्छे भर हो जायँ। मैं क
अलग होने का नाम भी लूँ, तो तुम मेरे मुँह पर थूक देना!"

भाभी सामने खड़ी थीं। बोलीं—"लाला, सारा अपराध
तुम मेरे सामने बच्चे हो, फिर भी मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ!
प्रेम ने देखा—यह कहते-कहते भाभी का कण्ठ भर आय

इतने में डाक्टर साहब बोल उठे—"कैसा जी है, दादा

भवानी बाबू ने इधर-उधर आँखें घुमाते हुए उत्तर दिया—"अब ी ठीक है, डाक्टर साहब। लेकिन प्रेम आया कि नहीं ?"

पुकार सुनते ही प्रेम और उसके साथ हेम तुरन्त उनके पास जा हुँचे।

डाक्टर साहब ने चलते-चलते कह दिया—"मैंने इंजेक्शन तो दे देया है। फिर भी दादा को थोड़ा कुनकुना दूध पिला देना।"

दूध पीकर भवानी बाबू ने प्रेम को अपने पास बैठने का संकेत करते हुए पूछा—"तुम तो कहते थे, हम इस बार बहू को साथ ले आयेंगे। फिर ले आये कि नहीं ?"

प्रेम ने सिर नीचा कर लिया।

दुर्गा सामने खड़ी थी। बोली—"बहू भी आयी है। दस, पाँच दिन में गोद भरी जाएगी। सगुन के लिए अभी से तैयार हो जाओ।"

भवानी बाबू की आँखों में आनन्दाश्रु आ गए। हेम इस समय प्रेम की ओर देख रहा था। तुरन्त उसके कान में बोला—"मिठाई ड्यू हो गयी। बधाइयाँ !"

विश्वनाथ हेम के पास जाकर बोल उठा—"हेम भैया, छोटी भाभी तुमको याद कर रही हैं।"

इसी समय महेश प्रेम के निकट आ पहुँचा। बोला—"अरे प्रेम, घड़ी से हीन तुम्हारा सूना हाथ मुझे अच्छा नहीं लगता।" और कथन के साथ ही उसने अपनी नयी घड़ी उतार कर प्रेम के हाथ में बाँध दी।

उसी क्षण प्रेम बोल उठा—"अब मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति कोई विकार नहीं रह गया है।"

पुलकित महेश ने उत्तर दिया—"इसका श्रेय भी तुम्हीं को है
ना, तुम जानते हो, मैं कितना दुर्बल व्यक्ति हूँ !"

मन्द-मन्द हास के झकोरे में सरोज हेम से कह रही थी "मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ । मुझे सभी बातों का पता लगता रहा है—केवल एक बात को छोड़कर।"

हेम ने पूछा—'कौन सी-बात ?"

सरोज ने उत्तर दिया—"यही कि तुम दुष्यन्त तो बन गये, पर शकुन्तला को तुमने मुझे कभी देखने का अवसर नहीं दिया !"

हर्षोत्फुल्ल हेम के मुख से निकल गया—"यहीं तुम भूल रही हो सरोज । बुद्धिमान व्यक्ति को जितने अवसर मिलते हैं, उनसे अधिक तो वह तुम्हारी भाँति स्वयं उत्पन्न कर लेता है !"

———

: १६ :

अन्त में शकुन्तला के साथ हेम के विवाह का अवसर भी आ गया। महालक्ष्मी की बात ही दूसरी थी। जैसी सम्पदा थी, वैसा ही उत्साह था। किन्तु जाह्नवी के घर में भी शोभा प्रसाधनों की कमी न थी। मंडप के चारों ओर कदली-स्तम्भों के साथ रम्भा पल्लव सुशोभित थे। आम्र-पत्रावली की बन्दनवार और विविध वर्णों की झंडियाँ घर के द्वार तक डोरियों के साथ लटक रही थीं।

इलाहाबाद से दोनों भाई-भाभियाँ तथा भतीजे आये थे, नंदनंदन के छोटे भाई—सपरिवार – चार दिन पूर्व ही आ गये थे। प्रेम तो था ही, सरोज भी आमंत्रित थी। महेश प्रेम के साथ-साथ दौड़ा-दौड़ा फिरता था—यह जाजम यहाँ ठीक रहेगी—द्वार पर ग्यारह बल्बों की रोशनी न हुई, तो यह कैसे मालूम होगा कि एक आई० ए० एम० का विवाह है और सब ठीक है, पर शहनाई में अब क्या देर है? बजाते क्यों नहीं?—अरे हेम, तुम अभी तक नहाये नहीं! मगर ठहरो, पहले उबटन लगवा लो यार। नाम के अनुरूप सोने जैसी देह कैसे जँचेगी? —देखो भाई, ऐसे समय हेम के साथ ऐसी कोई ठठोली न करना जो उसको सल जाय।—शारदा का हाल यह था कि वह पहले सरोज के

चाय बनवाने बैठ जाता। पहला प्याला वह जब स्वयं पी लेता, मेहमानों को भेजता। यही स्थिति साग-भाजी की थी। पहले जब पास कर देता, तब कटोरियाँ लगाई जातीं। प्रेम तो दो-दिन से सो नहीं पाया था। हेम की दोनों मामियाँ गीत-मांगल्य में सबसे आगे रहतीं। कभी-कभी छेड़-छाड़ और हास्य-व्यंग्य के प्रकार में कलहास-ध्वनियाँ गुंजित हो उठतीं। क्षेम बच्चों को बहलाने में लगा रहता। मकान के नीचे कई कमरे खाली करा लिए गये थे। एक में मिठाइयाँ बनवाने का प्रबन्ध था, दूसरे में उनके भंडार का, जिसमें मिठाइयों के अलावा मेवा और फल भी संगृहीत रहते थे। जाह्नवी के ममेरे भाई मातादीन भी आ गए थे। उनका आग्रह था कि मुझ को तो इस भंडार का ही चार्ज सौंप दिया जाय।

प्रीति-भोज का प्रबन्ध उस दिन किया गया, जिस दिन विवाह के बाद शकुन्तला हेम के घर विधिवत् आ गई। उस दिन नगर के बहुतेरे ऐसे लोग भी आमंत्रित होकर आये थे, जिन्होंने संकोच त्याग कर स्वयं कह दिया था—"बेटे, ऐसे समय मुझको न भूल जाना।"

इस परम आत्मीय वृन्द में सरकारी आफिसर, डाक्टर, वकील औ मुन्सिफ भी थे। शोभा के साथ पाण्डेयजी, अनारकली के साथ विद्यापति और मल्लिका के साथ घनानन्द भी पधारे थे।

जाह्नवी चारों ओर फूली-फूली फिरती थी। अतिथियों मे कोई सामने पड़ जाता—सबसे पहले चाय, जलपान और भो लिए समयानुसार पूछ लेती। सब सोचने लगते कि दीदी को प्र कितना ध्यान रहता है। कोई-कोई तो बोल भी उठता—'ऐ पूर्णा न होती, तो क्या मैजिस्ट्रेट की माँ बन जाती।'

पाण्डेयजी ने सामने आते ही कहा—"दीदी, मुझे भी कुछ काम बताओ।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"आपकी ही करुणा तो चारों ओर देदीप्यमान है।"

पुलक संचार की पावन घड़ियों में जाह्नवी को सदा अपने स्वामी नंदनंदन का स्मरण आ जाता। फलतः आँखें डबडबा उठतीं।

जिस कन्या विद्यालय में जाह्नवी अध्यापिका थी, उसकी प्रधानाध्यापिका अब एक माला चक्रवर्ती थीं। उनके साथ की सभी अध्यापिकायें भी आई थीं। उसने चालमती देवी को तो आमंत्रित किया ही था, पर भूली वह मल्लिका देवी को भी न थी।

शनिवार का दिन था। मल्लिका स्नान करके कपड़े बदल चुकी थी। एकाएक क्या देखती है कि शोभा के साथ जाह्नवी सामने उपस्थित है। एक हाथ में बैग है, दूसरे में कुछ निमंत्रण-पत्र हैं। शोभा के साथ वह उसी की गाड़ी पर आई है।

नमस्ते के उत्तर में हाथ जोड़कर मल्लिका ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—"इधर कैसे भूल पड़ी, जाह्नवी?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"आपके आशीर्वाद से हेम का विवाह निश्चित हो गया है। उसी का निमंत्रण देने आई हूँ। भूल पड़ने की तो ऐसी कोई बात अब रह नहीं गई। आपके मन में भले ही हो, लेकिन विश्वास करो दीदी, मेरे मन में रंचमात्र भी नहीं है। भगवान अगर कभी कठिन परीक्षा लेता है, तो उससे पार हो जाने की शक्ति भी देता है। आप चाहे जो समझें, पर मैं तो उस घटना को करुणामय की एक कृपा ही मानती हूँ। फिर जो कुछ हुआ, हो गया। पर अगर

सर पर आप न आईं, तो मैं यही समझूँगी कि ग्रन्थि अब तक
ई है और आपने मुझे क्षमा नहीं किया है।"

नुष्य में चाहे जितना द्वेष हो, किन्तु शालीनता के आगे वह सदा
भूत हो जाता है। सफलता के सारे प्रयत्न एक ओर सोते पड़े रहते
एक शालीनता ही तो है, जो उन सबको जगाकर, उठाकर, एक
थ खड़ा कर देती है।

मल्लिका ने एक-दो बार नहीं, दस-बीस बार यह सोचा था— 'अगर जाह्नवी मुझसे एक बार भी क्षमा माँग ले, तो मैं अब भी उसे नियुक्त करा सकती हूँ।'

वही क्षण आज उसके सम्मुख था। उसने कभी ऐसी कल्पना न की थी। वह तो सदा यही समझती आई थी कि जाह्नवी ऐंठकर चलती है। उसे अपनी प्रतिभा का बड़ा अभिमान है।

एक बात और थी। जाह्नवी मल्लिका से मिलने कभी नहीं आई, कहीं नौकरी भी उसने नहीं की; फिर भी उसकी कीर्ति और गौरव को कोई क्षति नहीं पहुँची। उसके बच्चे बराबर पढ़ते रहे। विद्यालय की छात्राएँ भी उसके पास बराबर जाती रहीं। उनका अवलम्ब कभी नहीं टूटा। धीरे-धीरे उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि कोई भी उसके विरुद्ध एक शब्द कहने का साहस न करता था। यह उसकी ऐसी सफलता और विजय थी कि मल्लिका को निरन्तर अनुभव होता था मैंने उसका अपमान नहीं किया, वरन् मेरा ही अपमान हुआ है। उस कुछ नहीं बिगड़ा, मेरा ही मुख उसने काला कर दिया है।

उसने सोचा— इन दशाओं में वही मेरे द्वार पर सहयोग की माँगने आई है। इससे बड़ा सौभाग्य मेरा क्या होगा!

विनयशीलता ऐसे ही अवसर पर एक अमोघ अस्त्र का काम देती है। यह उसी मर्मस्थल पर आघात पहुँचाती है, जहाँ व्रण होता है। फलतः वह व्रण फूट गया। मल्लिका हर्ष गद्‌गद् हो उठी। उसका कंठ भर आया। वह बोली —"अब तक तो मैं कुछ और समझती थी। पर आज मैं तुम्हारे सामने लज्जित हूँ। मैं जीवन की सारी बातें भूल सकती हूँ, पर यह बात मुझे सदा स्मरण रहेगी कि विरोध होने पर भी मुझे ऐसा कोई अवसर नहीं मिला जिससे कभी इस बात का पता चलता कि तुमने कहीं मेरी बुराई की है।"

अब उसके नयनों में आँसू छलक आये थे। अधर कम्पित थे और अंतस् की मर्मवाणी थरथरा रही थी।

अब तक घोमा भी चुपचाप खड़ी थी। आँखों से आँसू पोंछ कर शांत भाव से मल्लिका ने दोनों को आदर-पूर्वक बैठाया। शेफाली निकट आ पहुँची। बोली—"मम्मी, मैं चाय का आर्डर दे आई हूँ।"

मल्लिका का हाथ उसकी पीठ पर आ गया। बोली—"यह तुमने बहुत अच्छा किया दीदी।" फिर जाह्नवी की ओर उन्मुख होकर उसने कह दिया—"वास्तव में आज मैं समझ पाई हूँ जाह्नवी कि एकमात्र इसी गुण ने तुमको उन्नति के इस शिखर पर पहुँचाया है। मुझे दुःख केवल इस बात का है कि तुम्हारे इस उज्ज्वल इतिहास के साथ मेरे नाम पर धिक्कार के सिवा और कोई शब्द न होगा।"

जैसे बाँध टूट जाने पर जल-प्लावन होता है, मनोग्रन्थियाँ खुल जाने पर वैसे ही आत्मलीन करुणा झरना बन जाती है।

मल्लिका के आँसू थमते न थे। सिसकियाँ उभर-उभर उठती थीं। जाह्नवी ने उठकर उसे कण्ठ से लगा लिया। बोली —"दीदी, बस बहुत

चुका । सारा अपराध तो मेरा था । अपनी मनोभावना, अपनी वारधारा, अगर मैं तुम्हें समझा सकती, तो कहीं कुछ न होता ।"

आँसू पोंछती हुई मल्लिका बोली—"अमृतवाहिनी जैसी यह गंगा है, वैसी ही तुम हो । वैसे चाहे इस निमंत्रण में न आती, पर अब तो मुझे आना ही पड़ेगा । न आऊँगी, तो मेरी अन्तरात्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी ।"

अब शोभा को बोलना पड़ा—"दीदी ने जब मुझसे तुम्हारे पास चलने के लिये कहा, तब पहले तो मैं विचार में पड़ गई थी । पर मैंने सोचा चलो, इसी बहाने आप से मिल लूँगी । अप्रसन्न तो आप मुझसे भी रही हैं । यद्यपि मैंने वैसा कोई अपराध नहीं किया था । जो भी हो, पर अब तो आप मुझ से भी रुष्ट नहीं होंगी !"

मल्लिका ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"वैसे मैं आपको कभी क्षमा नहीं करती । पर अब अब वैसी कोई बात नहीं रह गई ।"

फिर चाय पीकर जाह्नवी जब चलने लगी, तब मल्लिका ने कह दिया—"मेरे लायक जो सेवा हो, निस्संकोच कह देना, जाह्नवी तुम्हारे साथ एक क्षण का सहयोग मेरी आत्मा की शांति के लिए औष बन जायगा ।"

फिर ऐसा भी एक क्षण आया—जब भाई का नाता रखने लोग बहिन को कुछ उपहार भेंट करते हैं । सगे भाइयों की बात है, वे जो कुछ दे दें, थोड़ा है । पर ऐसे कितने हैं, जो भाई न भी उसका नाता निभाने में कोई कमी नहीं रखते ?

परमेश्वरी बाबू उन्हीं में से थे । साड़ियों, कपड़ों, फ मिठाइयों के रूप में वे जब लगभग पांच सौ रुपये की साम तब सभी उपस्थित नर-नारी, किशोर-प्रौढ़ चकित हो उठे ।

जाह्नवी पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। केवल इस भय के कारण वह कुछ न बोली कि कहीं इस वृन्द के सामने परमेश्वरी वहस न करने लगें।

कुछ लोगों ने पूछा—"ये कौन हैं ?"

निस्संकोच जाह्नवी बोल उठी—"ये मेरे मुँह बोले भाई हैं। एक बार गाड़ी में भेंट हो गई थी। वार्तालाप में मैंने हेम से कह दिया—मामा जी को नमस्कार करो। बस, तभी से ये मुझ से भाई का नाता मानते आते हैं।"

सब ने परमेश्वरी बाबू की प्रशंसा की। कोई बोला -"वाह क्या बात है!"

फिर किसी व्यक्ति ने यह भी कह दिया—"सतयुग की बात दूसरी थी पर इस कलयुग में भी ऐसे भाई बने हैं, यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है।"

संयोग से इसी समय फिर किसी ने इस बात पर मुहर लगा दी—"ऐसे ही देवात्माओं से यह धरती सधी हुई है। नहीं तो पाप के भार से रसातल में न चली जाती!"

इस प्रकार हेम का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। एक दिन रात होते-होते जाह्नवी को ज्वर आ गया। ज्वर साधारण न था, वह मरण था। अभी तीन दिन पूर्व जो लोग प्रीतिभोज में आये थे, वही अब जाह्नवी का लीला-संवरण देखने आ पहुँचे थे। सारा घर मेहमानों से भरा था, सारा द्वार पड़ोसियों से भरा था। द्वार के आगे जो तख्त आमन्त्रित व्यक्तियों की सुविधा के लिए अब तक पड़े थे, वे सब भर गये थे। एक डाक्टर साहब जाह्नवी के निकट म्लानमुख सिर झुकाये

चिन्तित खड़े थे। हेम दीवार के सहारे खड़ा सिसक रहा था। शकुन्तला उसके पास बैठी हुई आँसू गिरा रही थी। क्षेम जाह्नवी के चरणों के निकट खड़ा कह रहा था—' हाय अब क्या होगा ?"

शोभा रूमाल लिये सिरहाने खड़ी आंसू पोंछ रही थी। कभी-कभी मल्लिका उससे कह उठती—"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है जाह्नवी चली जायगी। वह रुक नहीं सकती। उसका कार्य-काल पूरा हो गया है।"

इतने में अनारकली आ पहुँची। उसके केश बिखरे हुए थे और सितारों जड़ी साड़ी भूमि पर लिथर रही थी। आते ही उसने पुकारा —"जाह्नवी ! जाह्नवी !" पर अब वहाँ कौन सुनता था ! प्रलाप थोड़ी देर को रुक गया था।

इतने में जाह्नवी फिर प्रलाप कर उठी—"परमेश्वरी भैया ! परमेश्वरी भैया कहाँ गये ? अरे ! कोई बुलाओ उनको।"

परमेश्वरी बाबू निकट पहुँच गये। बोले "मैं आ गया, बहिन। बतलाओ, कहो, मेरे लिये क्या आदेश है ?"

परमेश्वरी बाबू गम्भीर तो बहुत हो रहे थे, किन्तु उनकी आँखों में अश्रु नहीं थे।

जाह्नवी कह रही थी—"देखो, वह देखो, मृत्यु की छाया मुझे बुला रही है। वह ··वह—देखो, मुझ से कहती है—चलो जाह्नवी, घण्टी बज गई। तुम्हारे स्वामी तुम्हें बुला रहे हैं। परमेश्वरी भैया, तुम उनसे मिलोगे नहीं ! अब अन्धकार बढ़ने लगा है। कहीं कुछ नहीं है। फिर भी—लो, वे स्वयं आ पहुँचे ! हटो, मुझे जाने दो—मुझे जाने दो।—हटो, रास्ता दो मुझे। मैं जाऊँगी। मैं जा रही हूँ। मैं जा रही हूँ।"

प्रलाप के साथ वह उठ बैठी। शोभा, मल्लिका आदि कई स्त्रियों ने उसे सम्भाला।

अन्त में सब कुछ समाप्त हो गया, जाह्नवी चली गई। लोग पछाड़ खा-खा कर रो पड़े। एक ऐसा क्रन्दन घर-द्वार में व्याप्त हो गया कि दस पाँच मिनट तो उस हाहाकार में ही विलीन हो गये।

प्रकृति जड़ होती है। रुदन और क्रन्दन की भी एक सीमा है। धीरे-धीरे लोग स्थिर होने लगे।

हेम के मामा, प्रेम और महेश सब मिल कर जाह्नवी की अर्थी सजाने लगे।

लिप्सा का अन्त नहीं है। मृत्यु तक को अनुरूप शृंगार चाहिए। हेम शकुन्तला के पास जाकर कह रहा था—"वह दुशाला तो लाना शकुन्तला, जो अम्मा के लिए तुम्हारे यहाँ से आया था।"

अर्थी सज रही थी। दुशाले पर खादी के बने गुलाब के दल बिखर गये। गली-कूचों, अटारियों और छज्जों, चबूतरों और दरवाजों से नाना नर-नारियों का एक स्वर गूँज रहा था "जाह्नवी जा रही है! वह, वह गयी! वह चली गयी!"

दाह-संस्कार हेम ने किया। श्मशान पर भी जब कुछ लोग रोने लगे, तो हेम बोला—"यहाँ मृत्यु अपना पर्व मनाती है। यहाँ रोना मना है। कोई मत रोओ।"

अन्त में जब सब लोग चल दिये, तब भी मल्लिका के आंसू न रुक सके। क्षण भर बाद एक निःश्वास के साथ वह बोल उठी—'मृत्यु एक दिन सबको आती है। पर ऐसी गौरवपूर्ण मृत्यु!"

जीवन-साफल्य की सबसे बड़ी कसौटी बस यही है कि प्रतिस्पर्धी

और शत्रु भी उसके लिए आंसू बहायें और उसकी महानता स्वीकार करें।

इस भीड़-भाड़ में किसी को कुछ ध्यान न रहा कि परमेश्वरीलाल कहाँ रह गये। वे फिर लौट कर घर नहीं पहुँचे।

दिन बीतते गये। महेश ने बहुत खोज की, पत्रों में विज्ञापन भी छपवाया, पर वे लौटकर नहीं आये—नहीं आये।

---

१. "हेमचन्द्र के साथ परमेश्वरीलाल का एक विचित्र प्रकार का स्नेह सम्बन्ध था।" स्पष्ट कीजिए।

२. परमेश्वरीलाल का चरित्र-चित्रण कीजिए।

३. जाह्नवी सोच रही थी —"स्वच्छ अन्तःकरण एक कमल-पत्र के समान होना चाहिए जिस पर एक भी जल-बिन्दु ठहर न पाये।" इस कथन के आधार पर जाह्नवी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

४. एक अध्यापिका के रूप में जाह्नवी का स्वप्न क्या था ?

५. "मल्लिका देवी आधुनिक उच्चवर्ग की सम्भ्रांत परिवार की दर्पयुक्त महिलाओं की प्रतिनिधि हैं।" इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

६. "हेम इस उपन्यास का एक अलबेला पात्र है।" हेम का चरित्र-चित्रण कीजिए और उक्त तथ्य की पुष्टि कीजिए।

७. "भवानी बाबू का परिवार एक मध्यमवर्ग के महत्वपूर्ण पारिवारिक जीवन का प्रतीक है।" सिद्ध कीजिए।

८. 'निरन्तर' उपन्यास में आप प्रमुख पात्र किसे मानते हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए तर्क उपस्थित कीजिए।

९. "इस उपन्यास में मन की गुत्थियों को बड़ी सावधानी से खोला गया है।" समझाइए।

१०. 'निरन्तर' उपन्यास में जीवन के विविध अंगों को बड़े यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है।" स्पष्ट कीजिए।

११. इस उपन्यास से हमें क्या-क्या शिक्षायें मिलती हैं ?

१२. निम्नलिखित अंशों का अर्थ प्रसंग लिखते हुए स्पष्ट कीजिए—

(क) "स्वच्छ अन्तःकरण एक कमल-पत्र के समान होना चाहिए, जिस पर एक भी जल बिन्दु ठहर न पाये।"

(ख) "काँटे चाहे रास्ते के हों, चाहे मानवी दुर्बलता के, चुभना उनका गुण है।"

(ग) "जीवन की प्रत्येक स्थिति अतीत का एक उत्तर है और वर्तमान के लिए एक प्रश्न—एक समस्या।"

(घ) "सचमुच बेकार हो जाने पर आदमी दो कौड़ी का हो जाता है। सारी प्रतिभा उन्हीं घड़ियों की चेरी है, जो मानसिक संतुलन को स्थिर बनाए रखती है।"

(ङ) "यही अपने साथ प्रवंचना है, यह वह छलना है जिसे मनुष्य निरन्तर अपने साथ करता रहता है। द्वेष सब के हृदय में रहता है पर एक चातुर्य और कौशल भी तो होता है, जिससे एक बार अपने निकट सम्पर्क का व्यक्ति लाख मतभेद रहने पर भी विरोधी नहीं बनता।"

(च) "जैसे सभ्यता के रूपों में विकास हुआ है, काल के चरण आगे बढ़े हैं, वैसे ही युग की प्रवृत्तियों के मान और वस्तुस्थितियों के मूल्यांकन भी बदले हैं।"

(छ) "अनुभव उस अमूल्य कंघे के समान है जो किसी-किसी को उस समय मिलता है, जब उसके सिर के बाल झड़ जाते हैं।"

(ज) "व्यक्तिगत जीवन में आचार-धर्म ही एक पाथेय रह जाता है।"

(झ) "जैसे बाँध टूट जाने पर जल-प्लावन होता है, मनोग्रन्थियाँ खुल जाने पर वैसे ही आत्मलीन करुणा झरना बन जाती है।"

लघु प्रश्न

१. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :—

(१) हेम के प्रति परमेश्वरीलाल के मन में इतना अपनापन क्यों था?

(२) जाह्नवी परमेश्वरीलाल से कटी-कटी क्यों रहती थी ?

(३) जाह्नवी को स्कूल की नौकरी क्यों छोड़नी पड़ी ?

(४) प्रेम और महेश में मनोमालिन्य क्यो पैदा हुआ ?

(५) महेश को झूठ का भेद कैसे खुला ?

(६) हेम उर्मिला से क्यों कतराता था ?

(७) पाण्डेय जी की निराशा का क्या कारण था ?

२ नीचे के वाक्यो में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

(क) मल्लिका देवी को समाज मे ··· पाने का बड़ा चाव था।

(ख दुःख की घड़ी भावी सुख की ·· होती है।

(ग) काँटे चाहे रास्ते के हो, चाहे मानवी दुर्बलता के,········ उनका गुण है।

(घ) कभी-कभी अतीत वर्तमान के मार्ग में बिल्कुल ·····के सामने डटकर खड़ा हो जाता है।

(ङ) मैंने स्वय अपने जीवन मे अनुभव किया है कि लोग उपकार करते हैं, इसलिए नही कि··· · ···किए बिना उनकी रोटी हजम नही होती।

(च) जो नैतिकता हमारे प्रकृत विकास को अपनाने, उसके परिपालन और परिपोषण मे सहायक नही होती—मनुष्य की बुद्धि उसे·········मान लेती है।

(छ) असर तो कर्म का पड़ता है, अनुभव का पड़ता है · ······ का नही, · ·· · का नही।

(ज) परम पिता केवल ·········हाथों को देखता है, मैले हाथो को नही।

(झ) मनुष्य मे चाहे जितना द्वेष हो, किन्तु··· ···· के आगे वह सदा पराभूत हो जाता है।

. निम्नलिखित मुहावरों को अपने वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए : –
(क) आटे-दाल का भाव मालूम पड़ना । (ख) बातें चुपड़ना ।
(ग) उल्लू सीधा करना । (घ) निन्यानवे का चक्कर । (ङ)
(च) नाक रगड़ना । (छ) आँखों में धूल झोंकना । (ज)
(झ) मन बुझना । (ञ) कण्ठ भर आना ।

शब्दार्थ

एक —

जीविकाहीन=बेरोजगार । **रोष**=क्रोध ।

दो —

सौख्य=सुख । **सिद्धि**=सफलता, पूर्ति । **विधि का विधान**= ईश्वर की इच्छा, भाग्य । **सुषुप्त मोह**=मन में छिपा हुआ मोह । **स्मृति**=याद, स्मरण । **अन्तश्चेतना**=हृदय, मन । **सद्यः विधवा**=हाल में ही जो विधवा हुई हो । **प्रशस्ति**=प्रशंसा । **वेडिंग**=विस्तर ।

तीन —

लकवा=एक रोग । (यह रोग जिस अंग में हो जाता है, वह अंग काम करना बन्द कर देता है) । **छालिया**=सुपारी । **अवगुंठन**= घूँघट । **लाण्ड्री**=कपड़े धोने की दुकान । **मनोयोग**=मन लगाकर । **डिगरी**=लड़की को डिगरी कहा गया है क्योंकि उसके विवाह के लिए धन खर्च करना पड़ेगा । **लौंडी-बांदी**=नौकरानी, दासी । **मुर्रौ**=टेंट अण्टी ।

चार —

स्वावलम्बी=आत्म-निर्भर, अपने पैरों पर । **मेधावी**=बुद्धिमा **आनन्दाश्रु**=खुशी के आंसू । **ध्यानावस्थित**=ध्यानमग्न, ध्यान में हुई । **छद्म**=नकली, जाली । **समवेत**=एक साथ ।

पाँच —

अभिनव=नई, नवीन । **पीड़ित मानवता**=दुःखी

मक्खीचूस = महाकंजूस । व्युत्पन्न = विद्वान् । अनुसंधान जिज्ञासा = खोज की इच्छा । निरन्तर सजग = सदैव सावधान । शुभ्र – सफेद । रश्मि = किरण । कीर्ति-अर्जन = यश कमाना । विमुग्ध = गद्गद् । अलंकृत = सज्जित । पश्चाताप = बाद में शोक या खेद होना । थर्डरेट = घटिया । निरवलम्ब = असहाय । अशोभन = अशोभनीय, शोभा न देना । कर्मनिष्ठ = कर्त्तव्य में निष्ठा रखने वाला ।

छः—

अक्षत = चावल । पुलकसंचारी संस्मरण = प्रसन्न करने वाली बातों की याद । भाव-प्रवण = भावुक । पुलकित = आनन्दित । टीस = दर्द । मर्मव्यथा = दिल का दुःख । मांगलिक बेला = शुभ अवसर । वीणापाणि = सरस्वती । पुलकित = अत्यन्त प्रसन्न । परिताप = क्लेश । भय-कातर = भयभीत ।

सात—

विग्रह = झगड़ा । पोढ़ा = पटला । सड़ँसी = साड़सी । मानसिक उद्वेलन = मन की उमड़न, मन की उथल-पुथल । संस्कार = दाह संस्कार, अत्येष्टि । हौंस = लालसा । मनोकामना = मन की इच्छा । विकार = बुराइयाँ । शमन = शान्त करना । निवारण = बचाव । आत्मीयता = अपनापन । प्रदर्शन-परितृष्णा = दिखावे की इच्छा । प्रच्छन्न = छिपी हुई । मर्मान्त = मन को छूने वाली । विमल = निश्छल । दुर्दिन = बुरे दिन । तृष्णाकुल = लालच से भरा । विदग्ध = जला हुआ । सन्ताप-ग्रस्त = चिन्ताग्रस्त, दुःखग्रस्त । आत्म प्रवंचना = अपने आपको धोखा देना ।

आठ—

पराभूत = पराजित, हारा हुआ । उपालम्भ = उलाहना । सर्वग्रासी = सब कुछ हजम कर जाने वाला । दूरदर्शिता = समझ, सूझ-बूझ । क्रन्दन = रोना । कंटकित = क्रुद्ध । वीभत्स = घृणा उत्पन्न करने वाला । समादर = आदर । अभिनन्दन = स्वागत ।

नौ—

आत्मीयता = प्रेम, अपनापन । मनोमालिन्य = मनमुटाव । दम्भी = घमण्डी । तटस्थ = पृथक्, किसी भी पक्ष में सम्मिलित न

होना। भुजंग=सर्प, साँप। द्वेषाग्नि=द्वेष की आग।
समाधान। द्वन्द्व=संघर्ष।

दस—

धुकधुकी=धड़कन। प्रतिदान=बदला। द्विविधा=
विरत=अलग। रन्ध्रियों=छिद्रों, दरारों।

ग्यारह—

मान— मानदण्ड। प्रकृत=स्वाभाविक। उच्छिष्ट=जू
ग्रहण न करने योग्य।

बारह—

रकम=धन राशि। हाहारव=हाहाकार। विकारहीन
शुद्ध निष्ठा, पवित्र निष्ठा। निःश्वास=लम्बी साँस। सिट्टी
होश गुम होना।

तेरह—

समाधान=हल। तिरस्कार=अपमान। कगार पर
जीवन का अन्त निकट है। हतप्रभ=निस्तेज। वेक्षर=चन
मिला हुआ।

चौदह—

विद्वेष भावना=द्वेष-भाव। मनोग्रन्थियाँ=मन की
अमोघअस्त्र=वह अस्त्र जो विफल नहीं होता। अहं-रोग='
रोग। आत्मघातिनी=स्वयं को नष्ट करने वाली। आत्मतुष्टि
सन्तोष। पाथेय=पथ का सहारा।

पन्द्रह—

स्नानार्थी=नहाने वाले। बिछुआ=पैर की उँगलियों क
पण। जाह्नवी=गंगा। पापनाशिनी=पाप दूर करने
परोक्ष=अनुपस्थिति। अवलम्ब=सहारा। धोती छाँटना
धोना। प्रकरण=प्रसंग। धूमिल अतीत=बीते हुये धुँधले
सूत्र=सम्बन्ध। सतत=निरन्तर, हमेशा। कण्ठ भर आन
रुँध जाना। कुनकुना=थोड़ा गर्म।

सोलह —

ठठोली=हँसी। देदीप्यमान=प्रकाशमान, जगमग। म
उदास।